



# तमश के पार



राजन स्वामी

# तमस के पार

लेखक

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २०१४, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१९

## प्राक्कथन

धर्मानुरागी सज्जनवृन्द!

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनीषियों में यह जानने की प्रबल जिज्ञासा रही है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, देह और गेह को छोड़ने के पश्चात् मुझे कहाँ जाना है? सच्चिदानन्द परब्रह्म कौन हैं, कहाँ हैं, कैसे हैं, तथा उनकी प्राप्ति का साधन क्या है?

इन्हीं विषयों को केन्द्र में रखते हुए विगत कुछ वर्षों पूर्व लखनऊ में एक आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया था।

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ (सरसावा) से पधारे हुए श्री राजन स्वामी जी का इन्हीं विषयों पर प्रवचन हुआ था। प्रवचन का शुभारम्भ धर्म की विशद व्याख्या के साथ

प्रारम्भ हुआ, जो श्रोताओं के हृदय को छू गया।

यद्यपि उस सम्पूर्ण कार्यक्रम की DVD तथा MP3 उपलब्ध थी, तथापि ऐसा लगा कि यदि इस प्रवचन को लिखित रूप में भी उपलब्ध कराया जाये, तो जन-सामान्य के लिए अधिक उपयोगी हो सकता है।

इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ज्ञानपीठ के विद्यार्थी कर्ण जी ने उस प्रवचन श्रृंखला को लिखित रूप में प्रस्तुत किया, जो "तमस के पार" नामक ग्रन्थ के रूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

आशा है, प्रस्तुत ग्रन्थ आपको रुचिकर लगेगा तथा आध्यात्मिक तथ्यों को अति सरल रूप में समझाने में सहायक हो सकेगा।

प्रमादवश हुई भूल-चूक को क्षमा करते हुए अपने



विचारों से हमें अवगत कराने का कष्ट करें, जिससे बाद के प्रकाशनों को परिमार्जित किया जा सके।

आपका शुभाकांक्षी

सद्गुरु प्रसाद आर्य

भूतपूर्व आई.ए.एस. (सेवानिवृत्त)

पूर्व सचिव, भारत सरकार

## अनुक्रमणिका

1	धर्म का स्वरूप	7
2	अलंकार व्याख्या	69
3	परब्रह्म कहाँ है?	136
4	परब्रह्म का स्वरूप कैसा है?	217
5	परब्रह्म के साक्षात्कार का मार्ग क्या है?	280

## प्रथम अध्याय

### धर्म का स्वरूप

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्ववेद का. १० सू. ८ मं. १

जो कुछ हुआ है, जो कुछ होगा, जो अपनी सत्ता से सब पर अधिष्ठित है, जो स्वरूप से आनन्दमय है, उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को प्रणाम है।

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी एवं धर्म की स्वर्णिम राह पर गमन का प्रयास करने वाले धर्मप्रेमी सज्जनों! अब हम धर्म-चर्चा करते हैं कि धर्म क्या है और हम धर्म को क्यों ग्रहण करें? क्या आज का विज्ञान हमें इतनी सुख-सुविधायें नहीं दे सकता कि हमें धर्म की शरण लेने की

## आवश्यकता पड़े?

जब हम मन्दिर में देखते हैं तो भीड़, कुम्भ के मेले में देखते हैं तो भीड़, मस्जिदों में देखते हैं तो भीड़। इसी प्रकार हम गुरुद्वारों में लाखों लोगों को देखते हैं। जैन मत, बौद्ध मत के सम्मेलनों में जब लाखों की भीड़ को देखते हैं, तो प्रश्न होता है कि क्या ये सभी लोग धार्मिक हैं? क्या किसी कर्मकाण्ड विशेष को करना ही धार्मिकता है? कोई यज्ञ होता है, लाखों लोग उसमें इकट्ठे होते हैं। कहीं चर्चा और सत्संग होता है, उसमें भी लाखों लोगों की भीड़ इकट्ठी होती है। सबकी अलग-अलग वेश-भूषा है। हिन्दू समाज में एक हजार के लगभग मत हैं।

इनकी भी वेश-भूषा अलग-अलग है। क्रिश्चियन की अलग वेश-भूषा है, जैन और अन्य अलग-अलग मत-मतान्तरों की अलग वेश-भूषा है। संसार में अधिकतर



लोग दावा करते हैं कि मैं धार्मिक हूँ, लेकिन "धर्म क्या है"? यह गहन रहस्य है।

व्यास जी ने कहा है कि मैं दोनों भुजायें उठाकर कह रहा हूँ कि धर्म ही सारे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला है, लेकिन मेरी बात को सुनने वाला कोई भी नहीं है। मैं कहता हूँ कि "धर्म से ही अर्थ होता है, धर्म से ही काम होता है, धर्म से ही मोक्ष होता है", लेकिन संसार मेरी पुकार को सुनने के लिये राजी नहीं है। धर्म की आवश्यकता क्यों है? यह गहन विषय है। एक बात हमें ध्यान में रखनी होगी कि जब सृष्टि नहीं थी तब भी धर्म था, और जब सृष्टि नहीं रहेगी तब भी धर्म होगा। धर्म किसी पूजा-पद्धति या कर्मकाण्ड को नहीं कहते हैं। किसी वेष-भूषा के धारण करने से कोई धार्मिक नहीं हो सकता।

धर्म की महानता हमें उस समय समझ में आती है, जब मानवता विनाश की कगार पर पहुँच जाती है। सामान्य रूप से तो लोग यही सोचते हैं कि धर्म की क्या जरूरत है? यह सभी की भूल है। धर्म से रहित कोई भी मानव बन ही नहीं सकता, वह पशुता का शिकार हो जायेगा।

कल्पना कीजिए कि यदि हर व्यक्ति चोरी करने लगे, हर व्यक्ति झूठ बोलने लगे, हर व्यक्ति की धीरता समाप्त हो जाये, तो क्या यह सृष्टि रहेगी? जब सृष्टि नहीं थी तब भी धर्म था, और जब सृष्टि नहीं रहेगी तब भी धर्म रहेगा। सत्य अनादि है, परमात्मा अनादि है, धर्म अनादि है। धर्म किसी पूजा-पाठ को नहीं कहते।

महाभारत का युद्ध होता है। उसमें अट्टारह अक्षौहिणी सेना मारी जाती है। अट्टारह अक्षौहिणी सेना

में सैंतालिस लाख, तेईस हजार, नौ सौ बीस सैनिक होते हैं, इतने मारे गये। कौरव पक्ष में तीन बचे – अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और कृतवर्मा। पाण्डव वर्ग में श्री कृष्ण बचे और पाँच पाण्डव बचे, शेष कोई नहीं बचा। यदि दुर्योधन मान जाता कि मैं पाँच गाँव दे दूँगा, तो यह भयानक युद्ध नहीं होता।

महाभारत का युद्ध क्यों हुआ? धर्म की मर्यादाओं के उल्लंघन के कारण। सच बात तो यह है कि भीष्म पितामह ने धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया। यदि भीष्म पितामह धर्म की मर्यादा का पालन करते और कह देते कि जुआ किसी भी कीमत पर नहीं होगा, पाण्डवों को वनवास नहीं भेजा जायेगा, तथा द्रोपदी का चीर-हरण नहीं किया जायेगा, और वह खड़े हो जाते। उनके साथ द्रोणाचार्य खड़े हो जाते, विदुर जी, कृपाचार्य जी खड़े हो

जाते, तो दुर्योधन क्या कर लेता या धृतराष्ट्र क्या कर लेते? लेकिन सैंतालिस लाख, तेईस हजार, नौ सौ बीस प्राणियों की हत्या क्यों हुई? क्योंकि इन सभी महान पुरुषों द्वारा धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया गया।

द्रोणाचार्य ने उल्लंघन किया। यदि द्रोणाचार्य कह देते कि नहीं, द्रोपदी का चीर-हरण किसी भी कीमत पर नहीं होगा। मैं दोनों पक्षों का गुरु हूँ, कोई भी व्यक्ति मेरे रहते जुआ नहीं खेल सकता। यदि कृपाचार्य जी ने भी ऐसा किया होता, तो सम्भवतः युद्ध रुक सकता था।

कहीं न कहीं योगेश्वर श्री कृष्ण जी भी दोषी थे, क्योंकि योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने एक ओर अर्जुन का रथ हाँका, तो दूसरी ओर दुर्योधन को अपनी नारायणी सेना दे दी। आखिर उस अन्यायी को नारायणी सेना देने की क्या जरूरत थी? यदि अर्जुन को अपना योग-ऐश्वर्य

दिखाकर सम्मोहित किया, उपदेश दिया, तो वहीं दुर्योधन को भी क्यों नहीं सम्मोहित कर लिया? दुर्योधन को भी क्यों नहीं दिखाया? यदि दुर्योधन इतना ही दुष्ट था, तो जब भीष्म पितामह को मारने के लिये अपना चक्र उठा सकते हैं, तो वही चक्र दुर्योधन को मारने के लिये क्यों नहीं उठाया? यदि दुर्योधन को उसी दिन मार देते, तो शायद महाभारत का युद्ध नहीं होता।

कुन्ती से भी गुनाह हुआ क्योंकि यदि कुन्ती यह कह देती कि कर्ण मेरा बेटा है, तो शायद महाभारत का युद्ध नहीं होता। अर्जुन कर्ण के चरणों में लिपट जाते और किसी भी स्थिति में महाभारत का युद्ध नहीं होता।

हर महापुरुष से थोड़ी-थोड़ी भूल हो रही है। कुन्ती से अलग हो रही है, शल्य से अलग हो रही है, कृपाचार्य से अलग हो रही है, और धृतराष्ट्र से तो हो ही रही है।

धृतराष्ट्र तो मूल में थे। उनको पुत्र-मोह ने घेर रखा था। इन विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा धर्म की अवहेलना के कारण लाखों लोगों का संहार हुआ।

इसी तरह से संसार में चलता रहता है। नये-नये वाद खड़े होते रहते हैं। चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे माओवाद हो, अपनी-अपनी विचारधाराओं को फैलाने के लिये लाखों का कत्ल कराया गया। जिहाद के नाम पर आज भी ऐसा ही हो रहा है। सारे संसार में जो आतंकवाद फैल रहा है, वह धर्म की मर्यादा का अतिक्रमण है। जिस किसी भी व्यक्ति को धर्म के वास्तविक स्वरूप का बोध हो जायेगा, वह किसी भी प्राणी को मन, वाणी, और कर्म से पीड़ा नहीं देना चाहेगा।

जहाँ धर्म है, वहाँ सुख और शान्ति है। धर्म के नाम



पर लड़ाई नहीं होनी चाहिये। मत के नाम पर लड़ाई हो सकती है, किसी वाद के नाम पर लड़ाई हो सकती है, किन्तु धर्म में प्राणी को मारने या पीड़ा देने का प्रश्न ही नहीं होता।

हम किसी मन्दिर में जाते हैं। वहाँ कोई विकृति देखते हैं, तो कहते हैं कि यह धर्म नहीं है, यह अधर्म है। प्रश्न यह होता है कि धार्मिक स्थानों में विकृति क्यों आई? धार्मिक स्थान, जहाँ पूजा-पाठ होते हैं, जहाँ परमात्मा की आराधना होती है, वहाँ विकृतियाँ क्यों देखने को मिलती हैं? सच यह है कि वहाँ कर्मकाण्ड भर होता है, धर्म का पालन नहीं होता। धर्म तो धारण करने की वस्तु है।

**यतोऽभ्युदयः निःश्रेयसः सिद्धिः स धर्मः।**

## वैशेषिक दर्शन १/१/२

धर्म किसको कहते हैं? जिससे प्रजा का कल्याण हो और अन्ततोगत्वा मोक्ष की प्राप्ति हो, उसको कहते हैं धर्म।

धर्मशास्त्र में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं—

१. धृति (धैर्य)
२. क्षमा
३. दम (इन्द्रियों का दमन करना)
४. अस्तेय (चोरी न करना)
५. शौच (आन्तरिक और बाह्य पवित्रता)
६. इन्द्रिय-निग्रह
७. शुद्ध बुद्धि

## ८. विद्या

९. सत्य (मन, वाणी, और कर्म से सत्य का आचरण करना)

१०. क्रोध न करना

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रहः।

धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

मनुस्मृति ६/९२

धर्म के ये लक्षण हैं। यदि किसी व्यक्ति में ये लक्षण नहीं हैं, तो वह धार्मिक नहीं है। अब हम इन दसों लक्षणों की व्याख्या करते हैं—

## धैर्य

धैर्यशाली किसको कहते हैं? सूरज उगता है लाल

रंग का, डूबता है तो लाल रंग का। लेकिन कभी ऐसा नहीं होता कि उगते समय किसी और रंग का है और डूबते समय किसी और रंग का है।

**समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानपमानयोः।**

**गीता १२/१८**

सुख हो, दुख हो, लाभ हो, हानि हो, जय हो, पराजय हो, सबमें जो एक समत्व भाव को लिये रहता है, वह धैर्यशाली है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को कहा गया कि कल आपका राजतिलक किया जायेगा, किन्तु सवेरा होने से पहले ही आदेश दे दिया गया कि राजतिलक तो नहीं होगा, आपको चौदह वर्षों के लिये वन जाना पड़ेगा।

जब राजसिंहासन देने की बात कही गई थी तो राम का चेहरा खिलखिलाया नहीं था, और जब वन जाने की

बात कही गई थी तो उनके चेहरे पर जरा भी उदासी नहीं थी। इसको कहते हैं धैर्य।

सुख और दुख का भोक्ता हर प्राणी को होना पड़ता है। जो व्यक्ति सुखों को पाकर उच्छृङ्खल हो जाते हैं, भूल जाते हैं उस सर्वशक्तिमान की सत्ता को, वे धैर्य से रहित कहे जाते हैं, और जो दुखों में अधीर हो जाते हैं, वे भी धैर्य से रहित कहे जाते हैं। धीरता का जिसमें गुण हो, जो समझ ले कि दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन का चक्र चलता रहता है, उसको कहते हैं धैर्यवान्।

## क्षमा

आप देखिये, पृथ्वी पर पैदा होने वाले अन्न को हम ग्रहण करते हैं, फल को हम ग्रहण करते हैं और बदले में हम क्या देते हैं? मल-मूत्र। पृथ्वी कितनी क्षमाशील है,

वृक्ष कितना क्षमाशील है। एक मनुष्य को आप अपशब्द कह दीजिये, जिन्दगी भर याद रखेगा, और वृक्ष पर हम पत्थर मारते हैं, बदले में वह हमें क्या देता है मीठा फल। यह क्षमाशीलता मनुष्य को धार्मिक बनाती है। जिसके पास क्षमा का गुण नहीं है, वह कभी भी महान नहीं हो सकता।

सर्वशक्तिमान परमात्मा कितना क्षमाशील है। वर्षा हो गई, लाभ हो गया, तो किसान कहेगा, कितना अच्छा है परमात्मा। यदि नुकसान हो गया, तो जली-कटी सुनायेगा, कैसा है परमात्मा, हमारी फसल बर्बाद कर दी। वह परमात्मा सर्वशक्तिमान है, लेकिन एक भी शब्द नहीं बोलता कि मेरे बन्दे! तू मेरी कृपा से जिन्दा है और मुझको ही अपशब्द बोल रहा है, मैं तुम्हारा नाश कर दूँगा। पर नहीं, वह दया का सागर है, क्षमा का सागर है।



जिस मनुष्य में क्षमा का गुण है, वही धार्मिक कहलाने का अधिकारी है।

## दमन

संसार में इन्द्रियों की उच्छृङ्खलता सारे कष्टों का कारण है। एक व्यक्ति है जो अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रखता, तो परिणाम क्या होता है? बहुत अधिक दौलत जोड़ता है। पड़ोसी भूखा मर रहा है और उसके यहाँ छप्पन प्रकार का भोजन बन रहा है, फिर भी उसकी तृष्णायें शान्त नहीं हो रही हैं। हम इन आँखों से सुन्दर रूप देखकर मोहित हो रहे हैं। कानों से मधुर आवाज सुनकर मोहित हो रहे हैं। नासिका से सुगन्धि लेकर मोहित हो रहे हैं। त्वचा से कोमल स्पर्श पाकर मोहित हो रहे हैं। जिह्वा से षट् रसों का सेवन करके मोहित हो रहे हैं।

हम सोच रहे हैं कि हम धार्मिक हैं। ऐसा नहीं है। हमने तो अपने को काल के गाल में डाल रखा है। मछली जिह्वा के वशीभूत होकर अपने जीवन को गवाँ देती है। हाथी हथिनी के स्पर्श को पाने के लिये पागल हो जाता है। हाथी को पकड़ने के लिये शिकारी क्या करते हैं? गड्ढा खोद देते हैं, काले रंग के कागज से एक हथिनी बना देते हैं। दूर से देखने पर ऐसा लगता है, जैसे वहाँ हथिनी ही खड़ी है। हाथी उसका आलिंगन करने के लिये जाता है, गड्ढे में गिर जाता है और शिकारियों के हाथ में अपने आपको सौंप देता है। यह है स्पर्श के वशीभूत होने का फल।

हिरण कान के वशीभूत हो जाता है। जब शिकारी मधुर आवाज बजाता है, तो हिरण अपनी सुध-बुध खो देता है और पकड़ा जाता है। पतङ्ग रूप पर मारा जाता

है। जहाँ दीपक जला नहीं, अपना सब कुछ छोड़कर उस पर कूद पड़ता है। एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होने से ये प्राणी काल के गाल में समा जाते हैं या बन्धन में पड़ जाते हैं। मनुष्य तो पाँचों इन्द्रियों से पाँचों इन्द्रियों का भोग कर रहा है। उपनिषद् में कहा है—

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानयैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

कठोपनिषद् ४/१

परमात्मा ने पाँच इन्द्रियाँ बनाई हैं। कोई धैर्यशाली पुरुष ही इन इन्द्रियों के विषयों की तरफ नहीं भटकता। अमृत की इच्छा करने वाला कोई धीर पुरुष ही अपने अन्दर उस शाश्वत सत्य को पाना चाहता है। वह बाहर नहीं भागता, इन पाँच विषयों के पीछे। जिसने इनका

दमन कर लिया, कि नहीं ये सब क्षणिक है , वही धैर्यशाली है।

आग में घी डालना शुरू कर दीजिये या एक चम्मच पेट्रोल लेकर डालना शुरू कर दीजिये, आग बुझेगी नहीं? और बढ़ जाएगी। जितना हम भोगते जायेंगे, उतनी ही तृष्णा बढ़ती जायेगी।

माँस खाने वालों से पूछिये। एक व्यक्ति मरने लगा, उसने जिन्दगी भर माँस खाया था। उससे पूछा, अब तुम्हारी क्या इच्छा है? उसने कहा, अब तो मैं मरने ही वाला हूँ, मुझे माँस खिला दीजिये। जिन्दगी भर माँस खाते रहिये, कभी भी इच्छा पूरी नहीं हो सकती, और यही तृष्णा चौरासी लाख योनियों के रूप में दुःख का कारण बनती है।

यदि आपमें इन्द्रियों के विषयों का दमन करने की प्रवृत्ति नहीं है, तो आप धार्मिक कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। चाहे आपकी वेश-भूषा कैसी हो, चाहे आपने भगवे वस्त्र धारण कर रखे हों, विभिन्न प्रकार के तिलक लगा रखे हों, मालायें धारण कर रखी हों, पूजा-पाठ करते हों, ग्रन्थों का ज्ञान रखते हों, ये सब कुछ बाह्य चीजें हो जायेंगी। धर्म के स्वरूप को कोई विरला ही जानता है। धर्मग्रन्थों का कथन है—

**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्। महाभारत (भीष्म पर्व)**

धर्म का परमतत्त्व गुहा में स्थित है। गुहा क्या है? जिसमें ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। आपने पौराणिक रूप से भगवान शिव का फोटो देखा होगा। भगवान शिव को किस पर बैठाया गया है? बैल पर। बैल क्या है? धर्म का प्रतीक है। बैल के चार पैर होते हैं। चार चरणों वाला

बैल है और उसके ऊपर भगवान शिव की सवारी बताई गई है। शिव क्या है? कल्याण स्वरूप परमात्मा ही शिव है। उनका डमरू और त्रिशूल क्या है? उनका त्रिशूल सत्व, रज, और तम की त्रिगुणात्मिका प्रकृति है, और त्रिशूल से बन्धा हुआ डमरू है जिससे आवाज निकलती है। पौराणिक मान्यता है कि भगवान शिव के डमरू से अष्टाध्यायी के चौदह सूत्र निकले, जिससे सारा व्याकरण बना है। यानि प्रकृति से पैदा होने वाले इस महत्तत्त्व से सारा संसार पैदा हुआ है, सारा ज्ञान-विज्ञान उससे निकलता है।

यह आलंकारिक वर्णन है। ऐसा न समझिए कि आप तो कारों में घूमते हैं और आपने परमात्मा को बैठा दिया एक बैल पर। आज कोई व्यक्ति बैल पर बैठकर घूमे, तो सब लोग क्या समझेंगे? कोई वनवासी, अनपढ़ आदमी



घूम रहा है। परमात्मा बैल पर नहीं बैठता। वह तो धर्म रूपी बैल पर विराजमान है। उसके चार चरण हैं—

**श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियात्मनः।**

**एतद् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥**

**मनुस्मृति २/१२**

श्रुति का कथन हो, स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र का कथन हो, सदाचार हो, और अन्तरात्मा की आवाज। इन चारों से परीक्षा की जाती है कि धर्म क्या है।

अधर्म क्या है? अभी धर्म के दस लक्षणों की व्याख्या चल रही है।

## अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। कोई भी सरकार आती है, तो क्या कहती है कि हम गरीबी मिटायेंगे, हम

गरीबी मिटायेंगे। गरीबी क्यों नहीं मिटा पाते। इसलिये क्योंकि मिटाने वाला और जिसकी गरीबी मिटाने की बात की जाती है, ये दोनों ही चोर हैं। चाहे अधिकारी हो, चाहे नेता हो, चाहे साधारण सब्जी बेचने वाला हो, दूध बेचने वाला हो, रिक्शा चलाने वाला हो, सभी चोरी करते हैं। योगदर्शन का कथन है—

**अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।**

**योग दर्शन २/३९**

यदि मनुष्य चोरी के कर्मों का परित्याग कर दे, तो सभी रत्नों की प्राप्ति उसको स्वतः ही हो जायेगी। भारत, पाकिस्तान, और इण्डोनेशिया का नाम दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में आता है। जिस दिन इन देशों के लोग चोरी करना बन्द कर देंगे, उस दिन इन देशों में कोई भी व्यक्ति

गरीब नहीं रहेगा। भारतीय संस्कृति क्या कहती है?

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः॥

जो परस्त्री को माता के समान देखता है और दूसरे के धन को मिट्टी के समान समझता है, निश्चित रूप से वही धार्मिक कहलाता है।

## शौच

शौच का अभिप्राय है आन्तरिक और बाह्य पवित्रता। आप शरीर को खूब नहला लीजिये। यदि मन पवित्र नहीं है, तो इसे नहलाने से क्या लाभ? साईं बुल्लेशाह ने एक बहुत अच्छा पद गाया है—

मक्का गये गल मुक्ति नहीं, जो सौ-सौ जुम्मे पढ़ आइये।

गंगा गये गल मुक्ति नहीं, जो सौ-सौ डुबकी लगाइये।

गया गये गल मुक्ति नहीं, जो सौ-सौ पिण्ड चढ़ाइये॥

यदि आपका हृदय पवित्र नहीं है, तो आप मक्का में जाकर नमाज भी पढ़ लेंगे, तो क्या होगा? गंगा में जाकर स्नान भी कर लेंगे, तो क्या मिलेगा? शरीर को शुद्ध कर सकते हैं, हृदय को नहीं। धर्मशास्त्र में कहा गया है—

अद्विर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिज्ञानेन शुद्ध्यति॥

मनुस्मृति ५/१०६

जल से शरीर शुद्ध होता है। सत्य का आचरण करने से मन शुद्ध होता है। विद्या और तप से जीव निर्मल होता है, और ज्ञान द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है।

यदि आपके अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान नहीं है, तो आप नदियों में स्नान करते फिरिये, कभी भी मोक्ष

की प्राप्ति होने वाली नहीं है। एक तिथि घोषित कर दी जाती है कि इस दिन जो नहा लेगा, सीधे मोक्ष को प्राप्त होगा।

यदि स्नान मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाये , तो वेद-शास्त्र के अवतरण की क्या आवश्यकता है? फिर पढ़ने-लिखने की क्या जरूरत है? आँखें बन्द कर ध्यान-समाधि लगाने की क्या जरूरत है? और यदि इसी से मुक्ति मिलती है , तो फिर उसमें रहने वाले सीपों , मछलियों , घोंघों सबको मुक्ति मिल जानी चाहिए। फिर तो ऋषि-मुनि पागल थे। इस स्थिति में तो ऋषि - मुनियों की सार्थकता ही नहीं होती। वस्तुतः यह विकृति है, धर्म नहीं। ज्ञान रूपी गंगा में स्नान किये बिना किसी को भी मुक्ति मिलने वाली नहीं है।

**ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः।**

जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता, साक्षात्कार नहीं होता, तब तक कोई भी भवसागर से पार नहीं हो सकता, यह वेदान्त का स्पष्ट कथन है। संसार के सभी धर्मग्रन्थों का आशय यह है कि धर्म का अन्तिम लक्ष्य है हृदय की पवित्रता। जब तक हृदय को पवित्र नहीं बना सकते, तब तक प्रियतम परब्रह्म आपके हृदय सिंहासन पर कभी भी विराजमान नहीं हो सकते, चाहे आप कितने भी कर्मकाण्ड करते रहिये। चाहे आप सौ-सौ मालायें फेरते रहिए।

सौ माला वाओ गले में, द्वादस करो दस बेर।

जो लों प्रेम न उपजे पिउ सों, तो लों मन न छोड़े फेर॥

श्री प्राणनाथ वाणी – किरन्तन १४/५

सारे संसार में यही चल रहा है। धार्मिक स्थानों पर



लाखों लोगों की भीड़ दिखाई देती है, लेकिन सच यह है कि क्या उन्होंने दिल को पवित्रता के उस चरम पर पहुँचाया है, जिस पर परब्रह्म का सिंहासन बन सके?

यदि आपके हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार की अग्नि जल रही है, तो उस कीचड़ में परब्रह्म के चरण-कमल नहीं पड़ेंगे और यही धर्म का पाँचवा लक्षण है— शौच अर्थात् आन्तरिक पवित्रता।

बारह साल पहले जब कुम्भ लगा था, उसमें यही हुआ था। गंगा में नहाने के नाम पर नागा महात्माओं में और पुलिस में झड़प हो गई थी। पुलिस वालों ने उन नागाओं को गोली मारी और उन नागाओं ने पुलिसवालों को मार-मारकर गंगा में फेक दिया था। यह क्या है? क्या इसी को धर्म कहते हैं? आप एक दिन के बाद भी तो नहा सकते हैं। लेकिन नहीं, हमें अभी नहाना है। क्या

यह हमारा धर्म कहता है? यह धर्म नहीं कहता, यह मत कहता है और इसे मनोविकृति कहते हैं। यह धर्म का आदेश नहीं है।

तीर्थ किसे कहते हैं?

**जनाः यैः तरन्ति तानि तीर्थानि।**

मनुष्य जिन शुभ कर्मों द्वारा भवसागर से पार होता है, उसको तीर्थ कहते हैं। सत्य बोलना तीर्थ है, तप करना तीर्थ है, स्वाध्याय करना तीर्थ है, परमात्मा का ध्यान करना तीर्थ है। आप किसी जल में स्नान करने मात्र को, किसी पर्वत की परिक्रमा करने मात्र को, तीर्थ मान लेते हैं, वही सबसे बड़ी भूल है।

**इन्द्रियों का निग्रह**

शम और दम दोनों अलग-अलग हैं, लेकिन दोनों

एक-दूसरे के पूरक हैं। एक व्यक्ति ने निर्णय किया कि मुझे मिठाई नहीं खानी है। उस व्यक्ति ने उस मिठाई को कमरे में रख दिया। दूसरे कमरे में बैठा हुआ वह सोच रहा है कि उस कमरे में मेरी मिठाई रखी है, उसे खाऊँ या न खाऊँ? मैंने तो सबको कह दिया है कि मुझे मिठाई नहीं खानी है। रात-दिन उसी के बारे में सोचता रहता है। परिणाम क्या होगा? देखेगा कि जब मकान में कोई नहीं है, तो छिपकर खा लेगा, फिर सबको कह देगा कि मैं तो मिठाई नहीं खाता हूँ।

क्रोध को दबायेंगे, तो दबा हुआ क्रोध एक दिन ज्वालामुखी बनकर भड़केगा और फूटेगा, वैसे ही जैसे पृथ्वी के अन्दर दबी हुई अग्नि जब ज्वालामुखी का रूप लेती है तो न जाने कितनों को समाप्त कर देती है। वैसे ही दबी हुई वासनायें जब उभरती हैं, तो उनका रूप

बहुत भयानक होता है।

नीतिकारों का कथन है कि वासनाओं को दबाइये नहीं। दमन नहीं शमन कीजिए। इसको कहते हैं इन्द्रिय – निग्रह। यह कैसे होगा? विवेक और विचार से। मनीषियों का एक ही कथन है कि काम का दमन नहीं करो, काम का शमन करो। काम कहाँ से पैदा होता है, उस पर ध्यान दीजिए।

**कामस्य बीजः संकल्पः सङ्कल्पादेव जायते।**

काम का बीज क्या है? संकल्प। मनुष्य अपने संकल्पों का बना होता है। जिसका हृदय अतिशय पवित्र है, उसके मन में दुर्विचार आते ही नहीं और वह किसी भी विकार से ग्रसित नहीं हो सकता।

आपने मिठाई को रखा है। दूसरे कमरे में बैठे हैं

और आपकी विवेक-शक्ति जाग्रत हो गई कि इसमें क्या है? इसमें थोड़ा सा घी पड़ा है, शक्कर पड़ी है, थोड़े से कुछ और स्वादिष्ट पदार्थ मिले हैं, यही तो है। क्षण भर के स्वाद के पीछे मैं अपना व्रत भंग क्यों करूँ ? आपने विवेक-शक्ति से अपने विचारों को इतना शुद्ध कर लिया है कि आपके सामने मिठाइयों का ढेर लगा है , लेकिन आप जिह्वा पर नहीं रख सकते।

एक हलवाई को देखिये। वह दिन भर मिठाइयों को बनाता है लेकिन उसकी जिह्वा ललचाती नहीं है, क्योंकि उसने विवेक शक्ति से जान लिया है कि इसको बनाते - बनाते तो मेरी पूरी जिन्दगी गुजर गई। इससे कभी भी तृष्णा की पूर्ति होने वाली नहीं है। मनुष्य के साथ यही भूल होती है। वह सोचता है कि आज खाकर देख लेता हूँ, कल नहीं खाऊँगा। कल फिर सोचता है कि आज

एक बार और खाकर देख लूँ। परसों फिर सोचता है,  
आज एक बार फिर खाकर देख लूँ। यह बेचारा "एक  
बार" कभी समाप्त नहीं हो पाता, क्योंकि वह इन्द्रिय-  
निग्रह नहीं कर पाता।

इन्द्रिय-निग्रह कहाँ से होगा? मन से।

मन का निग्रह कहाँ से होगा? चित्त से।

चित्त का निग्रह कहाँ से होगा? बुद्धि से।

बुद्धि का निग्रह कहाँ से होगा? ज्ञान के प्रकाश से  
और विवेक की शक्ति से।

यदि आपके अन्दर ज्ञान का प्रकाश है, तो बुद्धि  
चित्त से कहेगी कि हे चित्त! तू अच्छे संस्कारों वाला बन।  
चित्त के बुरे संस्कार अपने आप दब जाएंगे और जैसे  
चित्त के संस्कार होंगे वैसे ही मन के विचार होंगे और मन

तो इन्द्रियों का राजा है। जिसने मन को जीत लिया, उसने इन्द्रियों को जीत लिया। फिर उसको पता ही नहीं रहता कि मैं कहाँ हूँ। इसको एक छोटे से दृष्टान्त से समझाना चाहूँगा, जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि मन की पवित्रता क्या कुछ कराती है। पौराणिक मान्यता है—

एक बार अर्जुन को स्वर्ग में ले जाया गया। वहाँ उर्वशी ने बहुत अच्छा नृत्य किया। रात्रि को उर्वशी अर्जुन के पास आती है, प्रणय निवेदन करती है। अर्जुन कहते हैं कि हे माता! आपके चरणों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है। उर्वशी को क्रोध आ गया और कहा कि अर्जुन! मैं तुमसे प्रणय निवेदन करने आई हूँ और तुम मुझे माता कह रहे हो। अर्जुन कहता है कि हाँ माता! आप हमारे कुरुवन्श की माता हैं, इसलिये मेरी माता हैं। अर्जुन से उर्वशी पूछती हैं कि जब मैं नृत्य कर रही थी, तब तो तू

मुझे गौर से देख रहा था। अर्जुन बोला कि माते! मैं यह देख रहा था कि यदि माता कुन्ती भी आपकी तरह सुन्दर होती, तो मैं भी सुन्दर होता। मैं तो उसी रूप में आपको देख रहा था। यह है मन की पवित्रता। यदि हमारा मन पवित्र है, तो हम पूर्णतया पवित्र हैं।

आपने अपने मन को जीत लिया, तो इन्द्रियों को जीतने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। एक महात्मा जी गुजर रहे थे। उन्होंने रास्ते में देखा कि हलवाई जलेबियाँ तल रहा है। मन को काफी मना किया कि रे मन! तू मत ललचा, लेकिन मन नहीं माना। अन्त में, उन्होंने टोकरी में मुँह डाल दिया। हाथ से भी जलेबियाँ नहीं उठाई, बल्कि सीधे अपने मुँह को उस टोकरी में डाल दिया। हलवाई को गुस्सा चढ़ा, उसने जो जलेबी तलने वाला कलछा होता है, उससे महात्मा जी को बहुत



मारा। सब लोग कहने लगे कि भाई! ये विरक्त महात्मा दिख रहे हैं, तुम्हें इतनी निर्दयता से नहीं पीटना चाहिये।

महात्मा जी बोले— नहीं—नहीं! हलवाई जी ने तो बहुत अच्छा किया। मुझे जंगल में साधना करते—करते इतने साल हो गये। फिर भी मेरा मन इस जलेबी के लिये इतना पागल हो रहा था। मैंने तो जानबूझकर अपने मुँह को इस टोकरी में डाला, ताकि इस मन को अपनी करनी की सजा मिल जाये।

कल्पना कीजिये कि चित्त में संस्कार भरा है कि जलेबी खाने को मिलनी चाहिए और वह संस्कार जब प्रबल हो गया, तो मन के अन्दर वह आग भड़क उठी, अब जिह्वा बेचारी क्या करे? यदि मन पर विवेक—शक्ति का नियन्त्रण है, चित्त के अच्छे संस्कार कार्य कर रहे हैं, तो आप हलवाई के पास दिन—रात बैठे रहिये, आपके

हाथों में जलेबी का टोकरा होगा, फिर भी आप अपनी जिह्वा पर जलेबी नहीं रख सकते। यह है धर्म का लक्षण इन्द्रिय निग्रह।

## बुद्धि

बुद्धि क्या है? संसार में मनुष्य और पशु की वृत्ति में क्या अन्तर है? पशु भी खाता-पीता और सोता है, मनुष्य भी खाता-पीता और सोता है। मनुष्य की यही विशेषता है कि वह विवेकपूर्वक विचार कर सकता है। मनुष्य यह जान सकता है कि मैं कौन हूँ? क्योंकि जब मनुष्य जन्म लेता है, आँखें खोलता है, कुछ बड़ा होता है, विवेक-शक्ति जाग्रत होती है, तो उसके मन में प्रश्न होते हैं—

**कुतः आगतोऽस्मि।**

**विवेक चूड़ामणि ५१**

अर्थात् मैं कहाँ से आया हूँ?

**कुत्र गमिष्यामि।**

अर्थात् कहाँ जाऊँगा?

**को नाम बन्धः।**

मेरे लिए बन्धन कहाँ से हो गया कि मैं माता के गर्भ में इतने समय तक पड़ा रहा। न जाने कितने जन्मों में मैं किस-किस योनि में भटका हूँ? कभी गाय बना, कभी बैल बना, कभी हाथी बना, कभी बन्दर बना। मनुष्य योनि में कभी राजा बना, कभी कँगाल बना, कभी पुरुष बना, तो कभी स्त्री बना।

आखिर मैं कौन हूँ? यह विचार पशु-पक्षी नहीं करेंगे, पेड़-पौधे नहीं करेंगे। यह बुद्धि की विशेषता है

और बुद्धि में भी जिसकी सत्य को ग्रहण करने वाली बुद्धि नहीं है, तो निश्चित है कि आप धर्म की राह पर नहीं चल सकते हैं।

जानामि धर्मं न चमे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न चमे निवृत्तिः।

संस्कार मात्रेण हृदि स्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

महाभारत

दुर्योधन कहता है कि मैं जानता हूँ कि धर्म किसको कहते हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म किसको कहते हैं, लेकिन जब मैं धर्म का आचरण करने का प्रयास करता हूँ तो मेरी बुद्धि उसमें मेरी सहायता नहीं कर पाती। मेरा मन इतना विकृत हो जाता है कि मैं चाहकर भी धर्म का आचरण नहीं कर पाता हूँ।

एक माँसाहारी से पूछिए, एक भोग-विलास में डूबे हुए व्यक्ति से पूछिए, अफीम खाने वाले से पूछिए कि भाई! तू अफीम क्यों खाता है? कहेगा कि बहुत बुरी है। फिर क्यों खाते हो? तो कहेगा कि भाई मैं क्या करूँ, मेरे वश में नहीं है। इसका कारण क्या है? उसके चित्त से उसकी बुद्धि का नियन्त्रण हट चुका है। चित्त से नियन्त्रण हटते ही मन विषयों के अधीन हो जाता है और इन्द्रियाँ उसका रसपान कर लेती हैं। यही तृष्णा ८४ लाख योनि में उसको भटकाती रहती है। यह है बुद्धि।

## विद्या

विद्या का अभिप्राय क्या है? आज भारतवर्ष में, गाँव-गाँव में जाइये, मोहल्ले-मोहल्ले में जाइये, तो देखेंगे कि हर जगह मन्दिर खड़े हैं, लेकिन ब्रह्मविद्या के ज्ञान का प्रसार कहीं नहीं है। कहीं-कहीं लगभग पाँच प्रतिशत

ही है। आलिशान मन्दिर बना है, भक्तगण जाएँगे प्रसाद चढ़ाएँगे, उनकी भक्ति पूरी हो गई। भक्ति भी क्या ? सौदेबाजी। यदि मैंने पचास रुपये की मिठाई दी है, तो भगवान को मेरा यह काम करना होगा। यदि नहीं करेंगे, तो अगली बार से मैं यह चढ़ाना बन्द कर दूँगा। यह भक्ति क्या हुई?

जैसे आफिस में जाकर घूस देते हैं, वैसे ही भगवान के मन्दिर को भी घूस का स्थान बना रखा है। हमें पाप करने में डर नहीं लगता, सोचते हैं कि गंगा स्नान कर आएँगे, सारे पाप कट जाएँगे। यह धर्म का लक्षण नहीं है।

एक बार नारद जी ने देखा कि गंगा के किनारे इतनी भीड़ लग रही है, क्या होगा? आखिर बेचारी गंगा इतने लोगों का पाप कहाँ से धोएगी? इस कलियुग में लोग शराबी हैं, माँसाहारी हैं, दूसरे का धन हरण करते हैं,

चोरी करते हैं, और ये बेचारी गंगा सबके पाप धोते-धोते तो खुद गन्दगी से भर जाएगी। भागे-भागे गये, गंगा के पास पहुँचे, पूछा- गंगे! इतने लोगों का पाप तुम धो लेती हो। बताओ इन लोगों का क्या होगा? ये लोग तो शुद्ध हो जायेंगे और सारा पाप तुम्हारे ऊपर आ जायेगा। गंगा कहती है कि मैं अपने पास क्यों रखूँ, मैं समुद्र में जाती हूँ और सारा पाप समुद्र को दे आती हूँ।

नारद जी फिर दौड़कर गये समुद्र के पास। बोले हे समुद्र! तुम इन पापों का क्या करते हो? लोग अपने पाप गंगा में धोते हैं, तो वे सारे पाप गंगा तुमको दे देती है। समुद्र बोला कि मैं क्यों रखूँ अपने पास ? जब सूरज उगता है, तो उसकी गर्मी से मेरा पानी भाप बनकर बादलों के रूप में पहुँच जाता है। ये सारे पाप वहीं पहुँच जाते हैं। फिर नारद जी बादलों के पास गये और बोले

कि तुम क्या करते हो उन पाप का? बादलों ने कहा कि मैं अपने पास क्यों रखूँ? जिसके पाप जहाँ से आते हैं, वे फिर बरसकर वापस उसी के पास चले जाते हैं।

इसलिये गंगा नहाने से यदि पाप मिट जाये, तो तप, त्याग, ज्ञान, साधना, एवं धर्मग्रन्थों का महत्व समाप्त हो जाये और सारी सृष्टि की मर्यादा समाप्त हो जाएगी। यह हिन्दू समाज की भूल है जो यह सोचे बैठा है कि अमुक तिथि को गंगा में स्नान कर लेंगे, तो निश्चय ही हमारे पाप कट जाएँगे। ऐसा नहीं है। ब्रह्मज्ञान की अमृतधारा में स्नान किये बिना कोई भी व्यक्ति धार्मिक कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता, चाहे वह दिन-रात जाड़े में ठण्डे पानी में क्यों न डूबा रहे।

अविद्या के बारे में एक बात और कहना चाहूँगा। आज हिन्दू समाज में लगभग सत्तर लाख महात्मा हैं।



इनको तो ज्ञान का संवाहक होना चाहिये। लेकिन इनके पास स्वयं ब्रह्मविद्या नहीं है। हर प्राणी, हर मानव ब्रह्मविद्या से युक्त हो, सत्य-असत्य का निर्णय करे। इसी में सबका कल्याण है। विद्या किसको कहते हैं? जड़ को जड़ समझना और चेतन को चेतन समझना, अनित्य को नित्य न मानना या नित्य को अनित्य न मानना, सुख को दुख न मानना और दुख को सुख न मानना, यह विवेक ही विद्या कहलाता है।

**अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्म ख्यातिरविद्या।**

**योगदर्शन**

अनित्य में नित्य की भावना करना, जड़ में चेतन की भावना करना, और सुख में दुख की भावना करना अविद्या है, और जो इससे मुक्त हो गया, वह विद्या का

अधिकारी है। विद्या किसको कहते हैं?

**सा विद्या या विमुक्तये।**

विद्या वह है, जो भवसागर से मुक्ति दिलाती है। विद्या का तात्पर्य यहाँ अर्थकारी विद्या से नहीं है। आपने ऐसी विद्या पढ़ ली जिससे आप हर महीने लाखों रुपये कमाते हैं, तो विद्या का तात्पर्य यह नहीं है। यदि आपमें विद्या नहीं है, तो आप धार्मिक नहीं कहला सकते। चाहे आपने जटायें बढ़ा रखी हों, चाहे आपने भगवे वस्त्र धारण कर रखे हों या कोई भी वेश-भूषा आपने धारण कर रखी हो, विद्या के बिना धार्मिक कहलाने का आपको कोई अधिकार नहीं है।

**सत्य**

सत्य क्या है? सत्य वही है, जो सारे ब्रह्माण्ड को

चला रहा है। उस समय की कल्पना कीजिए, जब पति-पत्नी एक-दूसरे से झूठ बोलने लगे, माँ-बेटे में झूठ का व्यवहार हो, पिता-पुत्र आपस में झूठ बोलने लगे, गुरु-शिष्य झूठ बोलने लगे, तो क्या होगा? क्या यह दुनिया चल पायेगी? निश्चित है कि विनाश शुरू हो जायेगा।

आज लोगों को यह कहने को मिल जाता है कि आज के युग में झूठ बोले बिना कोई काम नहीं हो सकता। यह भ्रान्ति है। जिस दिन हर प्राणी मन, वाणी, और कर्म से सत्य का आचरण करने लगेगा, उसकी सारी समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जायेगा। झूठ सारी समस्याओं की जड़ है। एक झूठ को छिपाने के लिये न जाने कितने झूठ बोलने पड़ते हैं और झूठ की यह श्रृंखला शुरू हो जाती है। जिसने मन से, वाणी से, और कर्म से सत्य का आचरण किया है, वह जीवन में

कभी भी दुःखी नहीं हो सकता। इसलिये सत्य ही धर्म का लक्षण है।

एक चोर था, उसने कहीं प्रवचन सुन लिया कि सत्य बोलना चाहिये। उसने इस बात की मन में गाँठ बाँध ली कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं सत्य ही बोलूँगा। राजा के दरबार में गया, तो द्वारपालों ने पूछा कि कौन हो? कहता है कि मैं चोर हूँ। द्वारपाल हँसे कि चोर कहीं कहता है कि मैं चोर हूँ। फिर पूछा कि क्या करने जा रहे हो? मैं तो चोरी करने जा रहा हूँ। द्वारपालों ने कहा कि इसको जाने दो, यह मजाक कर रहा है। चोर कहीं कहता है कि मैं चोरी करने जा रहा हूँ। वह निर्द्वन्द्व होकर राजमहल में घूमता फिरा। महारानी का हार चुरा लाता है क्योंकि राजा ने भी विश्वास कर लिया। कोई पूछता कौन हो? सीधे बता देता कि मैं तो चोर हूँ। इसलिये किसी ने

विश्वास ही नहीं किया, क्योंकि चोर कभी भी यह नहीं बतायेगा कि मैं चोर हूँ और चोरी करने आया हूँ।

अन्त में राजा द्वारा खोज करवाई जाती है। जिस सुनार के पास बेचा गया था, वहाँ वह हार मिलता है। सुनार कहता है कि अमुक व्यक्ति हमको यह हार दे गया था। उसको बुलाया जाता है। राज्यसभा में राजा पूछता है कि क्या सचमुच तूने चोरी की है? वह कहता है कि हाँ राजन्! मैंने तो पहले ही दिन कह दिया था कि मैं चोर हूँ और चोरी करने आया हूँ, और अभी भी कह रहा हूँ कि मैंने ही महारानी का यह हार चुराया है। राजा हँसने लगा कि बहुत अच्छी बात है, भले ही इसमें चोरी का दोष है, लेकिन एक गुण तो है कि यह सत्य बोलता है। इसको मेरी मन्त्री-परिषद में शामिल कर दो। यह है सत्य का बल।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् जब भीष्म पितामह प्राण-त्याग करने लगे, तो युधिष्ठिर को बुलाया और कहा कि युधिष्ठिर एक तरफ असत्य का समर्थन करने वाली ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी और एक तरफ तुम केवल सात अक्षौहिणी सेना लेकर खड़े थे, लेकिन तुम्हारी विजय हुई है। क्योंकि—

**"यतो धर्मः ततो जयः।"**

**महाभारत**

जहाँ धर्म है, वहीं जय है। इसलिये कलियुग में लोगों को यह भ्रान्ति नहीं पालनी चाहिये कि झूठ के बल से हम आगे बढ़ जायेंगे। आपको सत्य आगे बढ़ायेगा।

**सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।**

**मुण्डकोपनिषद ३/१/६**

सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं।

परमात्मा सत्य है। उसको पाने के लिये सत्य का आचरण करना ही पड़ेगा। इसलिए श्री जी की वाणी कहती है—

सांचा री साहेब सांच सों पाईए, सांच को सांच है प्यारा।

किरंतन ८/७

वह परब्रह्म सत्य है, उसको पाने के लिये आपको मन, वाणी, और कर्म से सत्य का आचरण करना पड़ेगा।

## अक्रोध

अक्रोध का अभिप्राय है क्रोध न करना। आप चाहे खूब पाठ करते हैं, खूब पूजा करते हैं, आँखें भी बन्द करते हैं, फिर भी यदि क्रोध आता है, तो यह धर्म का लक्षण नहीं है। धर्म कहता है कि हमें क्रोध को जीतना

होगा, हमें झूठ को जीतना होगा, हमें किसी के धन को मिट्टी के समान समझना होगा।

संसार में लड़ाइयाँ क्यों हो रही हैं ? कल्पना कीजिए, यदि तीसरा विश्वयुद्ध छिड़ेगा, तो किस कारण छिड़ेगा? धर्म की मर्यादा के उल्लंघन के कारण। प्रथम विश्वयुद्ध हुआ, द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ, किसलिये? धर्म की मर्यादा के अतिक्रमण से। द्वितीय विश्वयुद्ध में लाखों प्राणी मारे गये। तृतीय विश्वयुद्ध में तो पता नहीं कि कोई बताने वाला बचेगा या नहीं बचेगा, यह तो सर्वशक्तिमान परमात्मा ही जाने। आखिर मनुष्य की तृष्णा ही मनुष्य के विनाश का कारण बन रही है और यही है धर्म की मर्यादा का उल्लंघन।

सामान्य प्राणी सोच ही नहीं पाता कि धर्म की कीमत कितनी है? यदि मानवता को कोई सुरक्षित रख



रहा है, तो वह है धर्म। धर्म का मतलब यह नहीं है कि बड़े-बड़े मन्दिर खड़े हो जायें, बड़ी-बड़ी मस्जिदें खड़ी हो जायें, बड़े-बड़े गिरजाघर और गुरुद्वारे खड़े हो जायें। यह धर्म का लक्षण नहीं है। मनुष्य के हृदय में धर्म हो, धर्म के लक्षण उसके हृदय में दृष्टिगोचर हों, और वह धर्म को आचरण में लाये अर्थात् धर्म के लक्षणों का पालन करे, तब वह धार्मिक कहलाता है। किसी भी वेश-भूषा से, किसी उपासना पद्धति को अपनाकर, किसी मत विशेष का अनुयायी बनकर, यदि वह कहता है कि मैं धार्मिक हूँ और शेष अधार्मिक हैं, तो निश्चित है कि वह अन्धेरे में भटक रहा है।

कल्पना कीजिए कोई देश किसी दूसरे देश पर हमला करता है, किसलिए? उस देश की सम्पदा पर अधिकार करने के लिये, अपने वर्चस्व का प्रदर्शन करने

के लिए। लोकेषणा (संसार में प्रतिष्ठा की इच्छा), वित्तेषणा (धन की इच्छा), दारेषणा (सगे-सम्बन्धियों का मोह), इन्हीं तृष्णाओं के पीछे संसार में सारी लड़ाइयाँ होती हैं, चाहे किसी राजकुमारी के लिये लड़ाई हुई हो, चाहे किसी का धन हड़पने के पीछे लड़ाई हुई हो, चाहे अपनी प्रतिष्ठा के लिये लड़ाई हुई हो, चाहे अपने वर्चस्व को साबित करने के लिये लड़ाई हुई हो।

मानव के अन्दर का छिपा हुआ दानव निकलता है और वह भोले-भाले मानवों का रक्तपान करता है। दंगे में क्या होता है? छोटे-छोटे बच्चों तक को बख्शा नहीं जाता। लेकिन मानव मानव का हत्यारा क्यों बनता है? इसके पीछे तृष्णा कार्य कर रही है। कोई किसी प्राणी का खून पीता है, किसके लिये? तृष्णा के लिये। मनुष्य माँस क्यों खाता है? इस जिह्वा के क्षणिक स्वाद के लिए।

आज तक किसी की यह जिह्वा तृप्त नहीं हुई और न कभी होगी। माँस में कोई स्वाद तो होता नहीं, लेकिन आप कसाईखाने में जाकर देखिए कि जानवरों को किस तरह से मारा जाता है। उनके हृदय से निकलते हुए आर्तनाद को परमात्मा के सिवा और कौन सुन सकता है?

हमारे हाथ में काँटा चुभ जाता है, तो हम पीड़ा से कराह उठते हैं, उस पर दवा लगाते हैं। और उन मूक पशुओं का निर्दयता से गला काटा जाता है। फिर मनुष्य उनके माँस को तल-भुनकर मिर्च-मसाले डालकर खाता है, उनकी हड्डियाँ तक चूस लेता है, पेट को कब्र बना लेता है, किसलिये? इस तृष्णा के पीछे। यह धर्म नहीं है। यह धर्म के नाम पर एक कलंक है। धर्म की चौथी कसौटी ही है अन्तरात्मा की साक्षी।

**स्वस्य च प्रियमात्मनः।**

**मनुस्मृति २/१२**

जो हम स्वयं के लिए दूसरों से चाहते हैं, वही व्यवहार हमें दूसरों के प्रति करना पड़ेगा। यही धर्म का लक्षण है। यदि हम दूसरों से प्रेम चाहते हैं, तो हमें भी दूसरों से प्रेम करना पड़ेगा। दूसरों से सम्मान चाहते हैं, तो हमें सम्मान की भाषा सीखनी पड़ेगी। धर्म वह है जो मन, वाणी, और कर्म से सबको सत्य की तरफ ले जाता है। यदि किसी प्राणी का दिल दुखता है, तो वह धर्म नहीं है।

संसार में आज एक बहुत बड़ी बाढ़ चल गई है। यह कहना कि सबका धर्म समाप्त हो जाये, केवल हमारा धर्म ही रहे। यह बहुत बड़ी भूल है। पूछा जाये कि परमात्मा कितने हैं? सबकी आवाज होगी— "एक"। सत्य कितने हैं? सब बोलेंगे— "एक"। धर्म कितने होंगे? सब बोलेंगे— "एक"। जब धर्म एक है, तो दूसरों के धर्म को नष्ट करने

का प्रयत्न कैसे कर सकते हैं? मत नष्ट हो सकते हैं, सम्प्रदाय नष्ट हो सकते हैं, किन्तु धर्म नहीं।

सम्प्रदाय क्या है? एक विचारधारा जो किसी महापुरुष ने दी होती है, उस विचारधारा के अनुयायियों का ही एक समूह खड़ा हो जाता है, जो कालान्तर में बढ़ता जाता है और एक सम्प्रदाय का रूप ले लेता है। उस सम्प्रदाय के अनुयायियों को मारकर या पैसे देकर बदला तो जा सकता है, लेकिन धर्म के स्वरूप को नष्ट नहीं किया जा सकता। धर्म शाश्वत है, धर्म अनादि है, धर्म सत्य का भी सत्य है, धर्म ही परमात्मा का स्वरूप है। इसलिये धर्म के स्वरूप को कोई विरला ही समझता है कि धर्म किसको कहते हैं।

यहीं से शुरू होती है अध्यात्म की मनोहर पगडण्डी, जिस पर चले बिना हमारी आत्म-जाग्रति नहीं हो

सकती। हम कौन हैं? हमारा यह बन्धन कहाँ से हुआ? यह केवल धर्म पर चलने से मालूम हो सकता है।

सबसे बड़ी भूल तो यही होती है कि अधर्म को आजकल धर्म समझा जाता है। आप किसी मन्दिर में चले जाइये, किसी पन्थ में चले जाइये, तो आपसे पूछा जायेगा कि आपने इस तरह का तिलक क्यों नहीं लगाया है? आप धार्मिक नहीं हो क्या? आपने गले में माला नहीं डाली है, इसका मतलब आप धार्मिक नहीं हैं? जो माला डालेगा, वह दिखाता फिरेगा कि देखो अब मैं धार्मिक बन गया हूँ। यही तो सबसे बड़ी भूल है। यदि माथा रंगने से वैकुण्ठ मिलता है, तो पूरा शरीर रंगने से क्या मिलेगा? गले में एक माला डालने से यदि स्वर्ग या वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है, तो पूरे शरीर को माला से लाद लेने पर क्या मिलेगा? ऐसा किस शास्त्र में लिखा है? इस वेश-

भूषा का कोई महत्व नहीं है। महत्व तो केवल धर्म के दस लक्षणों का है।

हम अपने को जानें, अपनी आत्मा के उस प्रियतम परब्रह्म को जानें कि वह कहाँ है, कैसा है? यह माया का जो बन्धन लगा है, यह कब हटेगा? और इस माया के इन बन्धनों को हटाने की जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वहीं से हमारी आत्मा को अध्यात्म की वह सुगन्धि मिलनी प्रारम्भ होती है, जिसका रसास्वादन करके हमारी आत्मा इस भवसागर से पार होती है और अपने प्रियतम परब्रह्म को पा लेती है।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला, चाहे वह हिन्दू हो, मुस्लिम हो, क्रिश्चियन हो, वह कभी राग-द्वेष की परिधि से नहीं बन्धेगा। वह जानता है कि सबका परमात्मा एक है। सत्य सर्वदा एक होता है। परमात्मा

सबके अलग-अलग नहीं हो सकते।

आज संसार में किसके लिए लड़ाइयाँ होती हैं? केवल कर्मकाण्डों के नाम पर लड़ाइयाँ होती हैं। एक बार वल्लभाचार्य मत में झगड़ा छिड़ गया। विषय यह था कि श्री कृष्ण जी ने जो मोरमुकुट पहन रखा है, वह बाँई तरफ झुका है या दाँई तरफ झुका है। इस पर गोलियाँ चल गई, एक ही पन्थ में न्यायाधीश था अंग्रेज, उसने जब मुकदमा सुना, तो बहुत हँसा। वह बोला— भाई! तुम्हारे परमात्मा का मुकुट दाँये झुकता है या बाँये झुकता है, क्या फर्क पड़ता है? मेरा निर्णय है कि यह न दायें झुकता है न बाँये झुकता है, बीच में है और यही मानना पड़ेगा। यदि परमात्मा का मुकुट दाँये झुक गया तो क्या नुकसान हो गया, और यदि बाँये झुक गया तो क्या नुकसान हो गया?



मन्दिरों में प्रवेश पर रोक लगाई जाती है कि यह अछूत है, इसे अन्दर मत आने दो। यदि आपके भगवान किसी अछूत के मन्दिर में आने से अपवित्र हो जाते हैं, तो दुनिया को पवित्र कौन करेगा? साबुन का काम है मैल निकालना। यदि साबुन ही कहने लगे कि मैं गन्दा हो जाऊँगा, तो निश्चित है कि यहाँ अज्ञानता का अन्धकार छाया हुआ है, यह धर्म नहीं है। इसलिये ज्ञान के प्रकाश में हमें धर्म को जानना होगा कि धर्म क्या है , धर्म के लक्षण क्या हैं।

धर्म को अपनाने पर ही मानव जीवन सुखी हो सकता है। धर्म का परित्याग सारी मानवता के विनाश की घण्टी है। न पशु धर्म से रहित हो सकता है, न मनुष्य हो सकते हैं, और न देवता हो सकते हैं।

गाय बछड़े को जन्म देते ही चाटने लगती है। यह

उसका स्वाभाविक गुण है, उसमें वात्सल्यता है। उसी तरह से वृक्ष अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं। यहाँ तक कि जड़ पदार्थ, सूर्य, चन्द्रमा अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं। मनुष्य को चाहिये कि प्रकृति के इन पदार्थों से शिक्षा ग्रहण करे। ये जड़ होकर भी हमें कौन सी सौगात दे रहे हैं? हमारे अन्दर तो चेतना का वह अंश विद्यमान है, जो यदि अपने स्वरूप को जान जाये कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, इस शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् मुझे जाना कहाँ है, तो निश्चित है कि वह देवत्व को प्राप्त कर लेगा। उससे भी परे ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त कर लेगा।

"ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति", जैसे अग्नि में लोहे के टुकड़े को जब डाला जाता है, तो वह लोहा नहीं रहता अपितु अग्नि के समान दहकने लगता है। धर्म का आचरण करके मनुष्य अपने हृदय मन्दिर में उस सर्वशक्तिमान,

सकल गुण निधान, सभी गुणों के स्वामी सच्चिदानन्द परब्रह्म को बसा लेता है, माया से सर्वथा परे हो जाता है, और उस मन्जिल पर पहुँच जाता है—

यद् प्रापणीयं तत्प्राप्तम्, यद् द्रष्टव्यं तद् द्रष्टमया।

महाभाष्य

जहाँ पहुँचने पर वह बोलता है कि जो कुछ मुझे पाना था मैंने पा लिया है, जो कुछ मुझे देखना था मैंने देख लिया है। अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। मैं आनन्द के उस सागर में हूँ, जिसका एक कण भी इस ब्रह्माण्ड में आ जाये तो सारा ब्रह्माण्ड कृत्य-कृत्य हो जायेगा।

धर्म परम सत्य से मिलाता है, मानव को मानव से लड़ाता नहीं है। हाँ, सम्प्रदाय लड़ाते हैं, मतवादी परम्परायें लड़ाती हैं। आज तक धर्म का प्रचार करने के

नाम पर, धर्म का लबादा ओढ़कर, न जाने कितने प्राणियों की हत्या की गई। शायद गंगा के अन्दर उतना पानी नहीं होगा, जितना धर्म के नाम पर मनुष्य ने मनुष्य का खून बहाया होगा। एक विचारधारा को दूसरे पर जबरन थोपने की यह प्रवृत्ति धर्म की गरिमा को कलंकित करती है।

आवश्यकता यही है कि आज के परिप्रेक्ष्य में हर मानव समझे कि धर्म क्या है? हम कौन हैं? हमारा निज स्वरूप क्या है और जिसकी उपासना हम करना चाहते हैं, जिसके चरणों में बैठकर हम शाश्वत प्रेम को पाना चाहते हैं, वह परमात्मा कहाँ है? कैसा है?



## द्वितीय अध्याय

### अलंकार व्याख्या

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाशिष्यते॥

बृहदारण्यक उपनिषद ५/१/१

वह सच्चिदानन्द परब्रह्म पूर्ण है, अनन्त है। उसका धाम भी पूर्ण है। उसी पूर्ण परब्रह्म से उसका पूर्ण (अनन्त) धाम सुशोभित होता है। उस पूर्ण में, अनन्त में अनन्त जोड़ा जाये, अनन्त में अनन्त घटाया जाये, गुणा किया जाये, भाग किया जाये, तो उतना ही रहता है। वह कभी भी कम या अधिक नहीं होता।

आज जिन तथ्यों पर सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा से प्रकाश डाला जायेगा, वह है अलंकार व्याख्या। संसार

में जब ज्ञान का शुद्ध प्रकाश नहीं फैलता , तो अन्धपरम्परायें चल पड़ती हैं। अन्धपरम्परा किसको कहते हैं? अज्ञानता के कारण एक लीक चल देना। जैसे आप कहीं भी गली-मोहल्ले में जाइये, आपको हनुमान जी का मन्दिर दिखाई पड़ेगा। लगभग सारा हिन्दू समाज मानता है कि हनुमान जी बन्दर थे। उनके मुख की आकृति बन्दर की बना दी जाती है, और पूँछ लगा दी जाती है। प्रश्न यह है कि क्या वाल्मीकि जी ने ऐसा कहा है? क्या सचमुच हनुमान जी बन्दर हैं?

वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र वर्णन है कि हनुमान जी वेद और व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान हैं। जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर जाते हैं, तो हनुमान जी दूत का भेष बनाकर वहाँ आते हैं। सुग्रीव भेजता है कि जाकर पता लगाओ कि ये दोनों राजकुमार

कौन हैं? कहीं मुझे मारने के लिये बालि ने तो नहीं भेज रखा है? हनुमान जी की राम से बहुत देर बात होती है। वे ब्राह्मण के भेष में आये होते हैं। जब हनुमान जी लौट जाते हैं, तो राम कहते हैं कि हनुमान ने इतनी देर तक मुझसे वार्ता की और संस्कृत का एक शब्द भी अशुद्ध उच्चारण नहीं किया। क्या आज दुनिया में कोई भी बन्दर है, जो वेद पढ़ता है? कोई यह नहीं सोचने की कोशिश करता कि क्या हनुमान जी बन्दर हो सकते हैं?

वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि जब राम सीता को खोजते-खोजते समुद्र के किनारे गए, तो देखा कि बालि सन्ध्या कर रहा है। प्रश्न यह है कि जब बालि सन्ध्या करता है, तो सन्ध्या तो वेद मन्त्रों से होती है। आज के बन्दरों को किसने सन्ध्या करते देखा है?

बालि क्या पहनता है? सोने के आभूषण पहनता

है। उसकी मणि कितनी चमकती है? वाल्मीकि रामायण में विस्तारपूर्वक वर्णन है कि बालि की पत्नी तारा विश्व की सबसे सुन्दर पाँच कन्याओं— द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी, अनसुइया, सीता— में से एक है। ये पाँच विश्व की सर्वश्रेष्ठ कन्याएँ मानी जाती हैं। विश्व की सर्वश्रेष्ठ कन्या कही जाने वाली तारा की शादी बालि से होती है। क्या कोई पिता अपनी बेटी की शादी एक बन्दर के साथ करेगा? इसका उत्तर सबको मालूम है।

सबसे बड़ी बात कि राम और सुग्रीव की मित्रता होती है। हनुमान जी पुरोहित का कार्य करते हैं और हवन करवाते हैं। आज के बन्दर क्या हवन करके दिखाएँगे? बालि की मृत्यु के बाद अंगद को "वेद मन्त्रों से" युवराज घोषित किया जाता है।

बहुत समय बीत जाने के पश्चात् राम लक्ष्मण को



भेजते हैं कि सुग्रीव ने तो मेरा काम नहीं किया। तुम जाकर उसे शीघ्र वचन पूरा करने का निर्देश दो। जब लक्ष्मण जाते हैं, तो सुग्रीव को सोने के पलंग पर शयन करते हुए देखते हैं। बताइये, आज के बन्दर कहाँ सोने के पलंग पर शयन करते हैं? उस सुग्रीव की नगरी है किष्किन्धा, जिसमें सात-सात मन्जिल के भवन सुशोभित हैं।

हिन्दू समाज पढ़ता है, सब कुछ जानता है, लेकिन अपनी भूल सुधारने के लिए तैयार नहीं है। एक बात कही जाती है—

बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहुं लोक भयो अंधियारो।  
ताहि सो त्रास भयो जग को, यह संकट काहु से जात न टारो॥

हनुमान चालीसा

अर्थात् बाल समय में हनुमान जी ने सूर्य को निगल लिया था। सूर्य तो पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा है। किसी का भी शरीर पृथ्वी के बराबर नहीं हो सकता। पृथ्वी से १३ लाख गुने बड़े सूर्य को कैसे कोई निगल सकता है? यह आलंकारिक वर्णन है। जो बातें कही गई हैं, उसमें अलंकार है।

अलंकार का अर्थ क्या होता है? एक रूपक दिया जाता है कि यह चीज ऐसी है। जैसे कोई बहुत सुन्दर है, तो कहा जाता है कि देखो चाँद सा मुखड़ा है। चाँद जड़ और मुख चेतन होता है, लेकिन जैसे चाँद चमक रहा है, उसी तरह किसी का मुख सुन्दरता से चमक रहा हो तो उसे चाँद की उपमा दी जाती है, वैसे ही आलंकारिक कथानकों के रूपक द्वारा एक-एक चीज को समझाया जाता है।

हनुमान जी सूर्य विद्या में निपुण थे। आजकल आप देख रहे हैं, सोलर से कितने बड़े-बड़े काम हो रहे हैं, पम्प चल रहे हैं, विद्युत बनायी जा रही है। हो सकता है, इसी सूर्य विद्या के उपयोग से गाड़ियाँ भी चल रही हों, और मैंने तो कहीं पढ़ा था कि सम्भावना है कि सूर्य के ताप से वायुयान भी चलाये जा सकते हैं। जो भी अन्तरिक्ष में यान भेजे जाते हैं, उनमें जितना प्रकाश होता है, सब सौर ऊर्जा (सूर्य के प्रकाश) से लिया जाता है। सूर्य का प्रकाश अनेक रोगों को नष्ट करता है। इस सूर्य विद्या के विशेषज्ञ थे हनुमान जी। जैसे कोई बच्चा किसी किताब को पूरी तरह से रट लेता है, तो कहते हैं कि किताब चट कर गया। इसी तरह, सूर्य विज्ञान से सम्बन्धित जितने रहस्य थे, हनुमान जी ने बचपन में ही उनका अध्ययन कर लिया था। इसलिये

कहा जाता है कि हनुमान जी सूर्य को निगल गये थे।

ऐसी ही एक और किवदन्ती (दन्तकथा) कही जाती है कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी लिया था और लघुशंका कर दिया, जिससे समुद्र का पानी खारा हो गया। अगस्त्य एक ऋषि का नाम है, जिन्होंने समुद्र में यात्रा करके देश-देशान्तरों में सत्य ज्ञान का प्रकाश किया था, इसलिए आलंकारिक रूप से कहा जाता है कि अगस्त्य ऋषि सारे समुद्र को ही पी गये थे। जैसे किताब को पूर्ण कण्ठस्थ करने वाले व्यक्ति के लिये कहा जाता है कि वह किताब को पी गया है, उसी तरह से समुद्र में आर-पार यात्रा करने के कारण समुद्र पीने की उपमा दी गई है।

अभी प्रसंग चल रहा था कि हनुमान जी बन्दर नहीं थे, तो क्या थे? हनु का अर्थ होता है टुड्डी। उनकी टुड्डी

बड़ी थी, इसलिये उनका नाम हनुमान पड़ा। उनकी माता का नाम था अन्नजना और पिता का नाम था पवन। हनुमान जी केरल के राजकुमार थे। रावण के अत्याचार से धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये ऋषियों के बीच मन्त्रणा हुई और तब अगस्त्य ऋषि ने हनुमान को दीक्षित करने का भार लिया था। वानर एक क्षत्रिय जाति का नाम है। प्राचीनकाल में अपने वर्ग विशेष को किन्हीं-किन्हीं नामों से सम्बोधित करने की परम्परा थी।

आप कहेंगे कि हनुमान जी की पूँछ में आग लगा दी गई, तो लंका जल गई। प्रश्न यह है कि सारी लंका को हनुमान जी ने जला दिया, तो फिर सारी लंका को पुनः बनाने का वर्णन रामायण में होना चाहिए था। यह तो कहीं नहीं लिखा है। कहा जाता है कि रावण के महल सहित सबके महल जल गये, केवल विभीषण के महल

को छोड़ दिया था। ठीक है, रावण के महल जल गया, तो जितनी रानियाँ थीं, जितने लोग रहने वाले थे, उनके लिये महल बनाने में तो महीनों लग जायेंगे, साल लग जायेंगे। इसका तो कुछ वर्णन होना चाहिये। लेकिन कहीं कुछ वर्णन नहीं है।

यह आलंकारिक भाव है। जैसे कोई व्यक्ति किसी से घृणा करता है, तो क्या कहता है? इसको देखकर मेरे तन-बदन में आग लग जाती है। इतना कठोर पहरा है, फिर भी शत्रु का आदमी समुद्र पार करके आ गया और सीता का पता भी लगा लिया, रावण के पुत्र अक्षय कुमार को भी मार डाला, यह कैसे सम्भव है? यह बात आग की तरह लंका में फैल गई। इसी को कहते हैं कि लंका को जला डाला था। ऐसा न समझें कि हनुमान जी की पूँछ थी और वे वैसे ही चला करते थे।

सात चिरन्जीवी व्यक्तियों में हनुमान जी आते हैं। चिरन्जीवी कैसे हुआ जाता है? शरीर पञ्चभूतात्मक होता है। योगी जब पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो महाप्रलय तक शरीर को संकल्प से रख सकता है। उसको भूख-प्यास कभी नहीं सताती और उसकी मृत्यु भी नहीं होती। सात चिरंजीवी व्यक्ति हैं – हनुमान जी, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, विभीषण, व्यास जी, और परशुराम जी। आज के बन्दरो को कहिये कि ध्यान-समाधि लगायें, क्या वे लगा सकते हैं? हमने तो एक राजकुमार को, इतने सुन्दर व्यक्ति को, एक बन्दर की आकृति दे दी। यदि कोई हमारे माता-पिता को, हमारे दादा को, या हमारे मित्र को बन्दर कहे, तो क्या हमें सहन होगा? लेकिन हम तो ऐसा ही करते हैं। क्यों? क्योंकि सत्य ज्ञान का प्रकाश नहीं है।

हमने जटायु को क्या बना दिया? गिद्ध बना दिया।  
ऐसी ही विकृतियाँ हैं।

दूसरी बात, जो लोग शिकार करते हैं, उनसे पूछा जाये कि भाई पशुओं को क्यों मारते हो? क्यों शिकार खेलते हो? तो क्या कहेंगे कि राम ने भी तो मारीच को मारा था जो हिरण के भेष में आया था, तो हम क्यों न मारें? यह जनता का रटा-रटाया उत्तर होता है। सच यह है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कभी हिरण को मारा ही नहीं।

विनय पत्रिका में वर्णन आता है कि जब राम – लक्ष्मण कुटिया में रहते थे, तो हिरण तो उनकी कुटिया में आकर बैठे रहते थे। फिर राम हिरण को क्यों मारेंगे और वेद-विरुद्ध आचरण क्यों करेंगे? धर्मशास्त्र में राजा के लिये शिकार खेलना वर्जित है। जैसे जुआ खेलना



पाप है, उसी तरह से राजा के लिये शिकार खेलना भी पाप माना गया है। उन हिंसक पशुओं का वध करने का विधान है, जो प्रजा को पीड़ा देते हैं। शेर, जंगली भैंसे, या जंगली सुअर को मार सकते हैं, क्योंकि वह मनुष्यों के लिए घातक होते हैं, हिरण को मारने का विधान किसी भी धर्मशास्त्र में नहीं है। वाल्मीकि रामायण में क्या लिखा है—

तप्त जिह्वो महादंष्ट्रमहाकायो महाबलः।

विचचार दण्डकारण्यम् मांसभक्षो महामृगः॥

**वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड सग श्लोक**

यह श्लोक मैंने तो नहीं बनाया। "तप्त जिह्वो" अर्थात् लपलपाती जिह्वा वाला। क्या हिरण की जिह्वा लपलपाती है? जितने माँसाहारी जानवर होते हैं, केवल उनकी

जिह्वा लपलपाती है। "महादंष्ट्रो" अर्थात् भयंकर जबड़ों वाला। जितने शाकाहारी प्राणी होते हैं, उनके जबड़े कोमल एवं पतले होते हैं। माँसाहारी प्राणियों के जबड़े काफी भयंकर होते हैं। यानि मारीच सिंह के भेष में आया था। "महाकायो महाबलः" अर्थात् भयंकर शरीर वाला, बहुत बल वाला। "मांस भक्षो" शब्द से आशय है माँस भक्षण करने वाला। हिरण तो मर जायेगा, लेकिन घास के अलावा कुछ नहीं खायेगा, अर्थात् कभी भी माँस नहीं खायेगा। कहने का आशय यह है कि मारीच बहुत विशालकाय सिंह के भेष में आया था। लेकिन आज भी पूरा हिन्दू समाज मानता है कि मारीच सोने का मृग बनकर आया था और राम ने उसको मारा था। राम के पास तो शब्दभेदी बाण की ऐसी कला थी कि वहीं से खड़े-खड़े मार देते। उनको पीछा करने की जरूरत ही

नहीं थी। हाँ, सत्य ज्ञान के अभाव में ऐसा ही कहा जाता है।

ऐसी विकृतियाँ सब तरफ छायी हुई हैं। सबसे पूछा जाये कि परमात्मा कितने हैं? तो सब बोलेंगे- "एक"। यदि परमात्मा एक है, तो अनेक रूपों की उपासना क्यों? इसका आलंकारिक अर्थ अलग-अलग है। वास्तव में सत्य को न जानने के कारण ही ये विकृतियाँ फैल जाती हैं। जब ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, तो ये विकृतियाँ समाज में इतना घुसपैठ कर जाती हैं कि इन्हें समाज से निकालना बहुत कठिन हो जाता है। किसी को समझाने पर प्रतिकार में वह क्रोध की वर्षा करता है। कहा जाता है कि हमारी आस्था पर प्रहार हो रहा है। यह आस्था नहीं, अनास्था है। यदि हम सत्य को बढ़ा नहीं सकते, तो हमें सत्य को ढकने का नैतिक अधिकार भी

नहीं है।

भगवान विष्णु की चार भुजाओं की कल्पना की जाती है। इस पर मैं एक छोटा सा दृष्टान्त देना चाहूँगा। भगवान विष्णु की चार भुजायें हैं। शंकर जी के तीन नेत्र हैं। ब्रह्मा जी के चार मुख हैं। इसी तरह भगवान शिव के भी पाँच मुख माने गये हैं। दुर्गा जी की आठ भुजायें हैं। ये सब आलंकारिक वर्णन हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है।

इसको एक दृष्टान्त से मैं समझाता हूँ। एक बार बीरबल ने एक स्वप्न देखा कि माँ दुर्गा ने उन्हें सहस्रमुखी होकर दर्शन दिया। सपने में बीरबल पहले तो हँसे और फिर रोने लगे। दुर्गा जी ने पूछा – बीरबल! पहले तो तुम हँसे, फिर रोने लगे, क्यों? उन्होंने कहा – हे माते! आपको देखकर बहुत आनन्द हुआ, इसलिये मैं हँसा। रोया इसलिये कि जब मुझे जुकाम होता है तो मैं

बहुत परेशान होता हूँ, यदि आपको जुकाम हो जायेगा तो १००० मुखों से कैसे उसका सामना करेंगी?

जो काम एक मुख कर सकता है, फिर उसके लिए हजार मुख की क्या आवश्यकता है? सब लोग जानते हैं कि रावण के दस मुख थे। किसलिये? खाया जाता है एक ही मुख से, फिर दस मुखों की क्या आवश्यकता? इसलिये कि रावण दस विद्याओं का पण्डित था। सामान्य व्यक्ति एक विद्या का पण्डित होता है। रावण दस विद्याओं का पण्डित था। इसलिये कहा जाता है कि वह दस मुख वाला था।

अभी एक और गहन रहस्य है। जो धर्मप्रेमी सज्जन गीता का पाठ करते हैं, उसमें भी यह प्रसंग आता है। योगेश्वर श्री कृष्ण जी अपने योगबल से अर्जुन को विराट स्वरूप दिखाते हैं। उसमें सीधे किरीटिनम, गदिनम,

चक्रिणं आदि शब्द आये हैं। इसको सामान्य अर्थों में पढ़कर कोई भी यही अर्थ लेगा कि जो महाविराट का स्वरूप दिखाया था, उसमें गदाधारी, मुकुटधारी, चतुर्भुज स्वरूप भगवान का स्वरूप था। सच क्या है? आज यह समीक्षा का विषय है कि क्या सचमुच भगवान की चार भुजाएँ हैं? आप दो भुजाओं से काम कर सकते हैं, तो प्रश्न यह है कि चार भुजाओं की क्या आवश्यकता है? वस्तुतः यह सारा वर्णन आलंकारिक है। यदि सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा होगी, तो संसार में सत्य ज्ञान का फैलाव होगा और ये सारी भ्रान्तियाँ मिट जाएँगी।

चतुर्भुज का आशय क्या है? आपने देखा होगा कि भगवान विष्णु के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा, और पद्म यानी कमल है। वे बैठते किस पर हैं? गरुड़ पर।

गरुड़ क्या है? सत्य का प्रतीक है। "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीय उपनिषद २/१)। ब्रह्म परमात्मा क्या है? सत्य है और वह सत्य स्वरूप परमात्मा, सत्य रूपी गरुड़ पर विराजमान है। वह सबकी रक्षा करता है। रक्षा किस तरह से होगी? चार चीजों से रक्षा होती है। इसलिये उसको चतुर्भुज कहा जाता है।

शंख— सत्य ज्ञान का प्रतीक

चक्र— संस्कृति

गदा— अन्याय का विनाश करने वाली शक्ति

पद्म— कमल (सौन्दर्य, ऐश्वर्य)

सत्य स्वरूप परमात्मा इन्हीं चार स्वरूपों द्वारा सारी सृष्टि की रचना और पालन करता है। इसी प्रकार भगवान योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को जो विराट रूप

दिखाया, उसमें भी चतुर्भुज स्वरूप का वर्णन आता है, उसमें भी यही प्रसंग है। योगेश्वर श्री कृष्ण धर्म द्वारा सत्य की रक्षा करना चाहते थे। इसलिये वे इतने सक्षम थे कि विराट स्वरूप में उनको भी चतुर्भुज स्वरूप कहा गया।

सच बात तो यह है कि पूरी गीता को पढ़ जाइये, शुरू से लेकर आखिर तक, यदि उसके गुह्य अर्थों पर हम विचार करें तो कहीं यह सिद्ध नहीं होता कि भगवान श्री कृष्ण सच्चिदानन्द परमात्मा हैं। यह सिद्ध होगा कि वे योगेश्वर थे। गीता का अन्तिम श्लोक यही कहता है—

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।**

**तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ गीता १८/७८**

जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन है, वहाँ ही विजय होगी, यह मेरा निश्चित मत है, यह



संजय कहते हैं।

प्रश्न यह है कि जब श्री कृष्ण जी को योगेश्वर कहा जाता है, तो फिर उन्हें सच्चिदानन्द परब्रह्म कैसे कहा जाता है?

गीता में तीन बोल हैं। एक तरफ ब्राह्मी अवस्था के बोल हैं। जैसे अग्नि में लोहे को डाल दीजिये, तो लोहा भी अग्नि की तरह दहकने लगता है। उस समय लोहे को अग्नि कह दीजिये, तो उसमें कोई अन्तर नहीं होता। इसी को उपनिषद में दर्शाया गया है—

**ब्रह्मविदो ब्रह्मैव भवति।      मुण्डक उपनिषद ३/२/९**

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म के समान ही होता है। वह ब्राह्मी अवस्था में कहता है "अहं ब्रह्मास्मि"। इसी को सूफी मत में कहा गया "अन् अल् हक"। गीता में जब श्री

कृष्ण जी कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

गीता १५/१८

जहाँ "मैं" लेकर ब्राह्मी अवस्था में कहा गया है, समझ लीजिये श्री कृष्ण उस ब्राह्मी अवस्था में कह रहे हैं। जब वे कहते हैं—

बहुनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। गीता ४/५

हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म हो चुके हैं, जिनको मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता। यहाँ योगेश्वर बोल रहे हैं। एक भक्ति की बात कही जाती है, जब वे कहते हैं—

सर्वान् धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

## गीता १८/६६

सभी धर्मों को छोड़कर तू मेरी शरण में आ जा। श्री कृष्ण जी के कहने का आशय यह है कि हे अर्जुन! यदि तू तर्क-वितर्क छोड़कर समर्पण भावना से मुझ पर समर्पित हो जायेगा, तो निश्चित है कि तुझे परमतत्व प्राप्त हो जायेगा। योगदर्शन का स्पष्ट कथन है—

**समाधिसिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। योग दर्शन २/४५**

जब तक मनुष्य में समर्पण की भावना नहीं आती, तब तक उसको समाधि की प्राप्ति कभी नहीं होती। यह समर्पण भावना दर्शाने के लिये कहा गया है कि तू सबको छोड़कर मेरे पर ही आश्रित हो जा। लेकिन यह कहीं नहीं कहा कि मैं ही परमात्मा हूँ। ब्राह्मी अवस्था में जो कहा गया, उसका यही भाव है।

उसी सन्दर्भ में यह बात चल रही थी कि जो श्री कृष्ण जी ने विराट स्वरूप दिखाया, वह कैसे दिखाया? जिन लोगों ने विवेकानन्द के बारे में जाना है, वे अच्छी तरह से जानते हैं कि जब विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के पास गए, उस समय उनका नाम था नरेन्द्र। बातचीत में, विवेकानन्द जी ने रामकृष्ण परमहंस जी से एक बात पूछी— गुरुदेव! क्या परमात्मा को देखा जा सकता है? उन्होंने कहा— हाँ, वैसे ही देखा जा सकता है जैसे मैं तुमको देख रहा हूँ। लेकिन क्या परमात्मा को देखने के लिए कोई रोता है? क्या तुमने किसी ऐसे व्यक्ति को देखा है। ऐसी बातें चल रही थीं।

अचानक रामकृष्ण परमहंस जी ने उनको अपने हाथों से छू दिया। विवेकानन्द समाधि अवस्था को प्राप्त हो गये। उन्होंने देखा कि सारा ब्रह्माण्ड शून्य में लीन हो

रहा है। जब विवेकानन्द को यह दिखा, तो काँप उठे। थोड़ी देर में ठाकुर रामकृष्ण परमहंस हँसते हुए नजर आए और उन्होंने विवेकानन्द को पुनः सामान्य अवस्था में कर दिया। यह तो एक योगी का ऐश्वर्य-बल था। उसी तरह से योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को दोनों सेनाओं के मध्य में अपने योगबल से उस परमसत्य का रसपान कराया, जिसके असंख्य नेत्र हैं। अथर्ववेद का पुरुष सूक्त कहता है—

**सहस्र बाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पाद्।**

उस परमात्मा की सत्ता में असंख्य प्राणियों के नेत्र हैं। परमात्मा का स्वरूप-वर्णन दो तरह से होता है। एक तो विराट के रूप में और एक प्राणियों के रूप में। जब विराट स्वरूप का वर्णन किया जाता है, तो यह दर्शाया जाता है कि असंख्य सूर्यों का प्रकाश उसके तेज की

बराबरी में कुछ नहीं है। जब प्राणी वर्ग के दृष्टान्त से वर्णन किया जाता है, तो उसकी ज्ञान-शक्ति को दर्शाया जाता है कि उसकी असंख्य भुजायें हैं। भुजाओं का मतलब हमारी जैसी भुजायें नहीं, उसमें अनन्त शक्ति है। उसके असंख्य नेत्र हैं। हम तो दस किलोमीटर तक की कोई चीज नहीं देख सकते, किन्तु परमात्मा की अनन्त ज्ञान-शक्ति सबको जानती है। अनन्त भुजायें, अनन्त नेत्र, अनन्त बाँहें, और अनन्त पैर होने का आशय यह है कि उसकी सत्ता सर्वत्र है। एक अणु-परमाणु भी उससे खाली नहीं है।

योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने दिव्य योगैश्वर्य द्वारा इस स्वरूप को दर्शाया था। इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान श्री कृष्ण सच्चिदानन्द परमात्मा हैं। तभी तो उन्होंने अन्त में कहा—

## तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। गीता १८/६२

हे अर्जुन! तू उस परमात्मा की शरण में जा। अब प्रश्न यह होता है कि जिन भगवान श्री कृष्ण जी ने चतुर्भुज स्वरूप दिखाया, उसमें किरीटिनम्, गदिनं, चक्रिणं आदि शब्दावलि का प्रयोग किया गया है, अर्थात् शंख, चक्र, गदा, और पद्म ये चार चीजे हैं जिनके द्वारा समाज को संगठित किया जाता है।

### यज्ञो वै विष्णुः।

शतपथ ब्राह्मण में इसकी व्याख्या की गई है। विष्णु का चतुर्भुज स्वरूप वही है, जो गीता में श्री कृष्ण जी का चतुर्भुज स्वरूप बताया गया है। जैसे कि मैंने कहा, शंख क्या है? उद्धोषक शक्ति। यदि आप समाज को सत्य की तरफ ले जाना चाहते हैं, तो सत्य का उद्धोष करना

पड़ेगा। चक्र क्या है? उस शक्ति को स्थानान्तरित करना पड़ेगा। यह स्थानान्तरण की प्रक्रिया है। और तीसरी है गदा अर्थात् योगेश्वर श्री कृष्ण ने कंस, शिशुपाल जैसे असुरों का विनाश पहले ही कर दिया था। अत्याचारी असुरों का विनाश करके उन्होंने सत्य की रक्षा की थी। यह है गदा। और पद्म यानी ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठाना। यह है भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप और योगेश्वर श्री कृष्ण द्वारा दिखाये गये चतुर्भुज स्वरूप का रहस्य।

आप जिस गायत्री मन्त्र का जप करते हैं, उस गायत्री का आजकल फोटो बनाया जाता है। लोगों ने गायत्री माता कहना शुरू कर दिया। माता क्यों कहते हैं? आलंकारिक वर्णन के रूप में किसी भी स्त्रीलिंग स्वरूप को मातृशक्ति से संबोधित किया जाता है। वेद में एक



मन्त्र आता है—

स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानां।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यम् दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्ववेद १९/७१/१

अब गायत्री का अर्थ क्या है? गायत्री एक छन्द का नाम है। गायत्री छन्द में २४ अक्षर होते हैं। गायत्री देवी को बैठाया गया है हँस के ऊपर। उन्हें मातृशक्ति के रूप में दर्शाया गया है, पंचमुखी के रूप में भी दर्शाया गया है। इसी तरह से सरस्वती को हँस के ऊपर बैठाया गया है। इसका भाव क्या है? हँस के ऊपर ही क्यों बैठाया गया है, इसका क्या कारण है? हँस क्या करता है, हमेशा मोती चुगता है, यह सबको मालूम है। हँस का रंग श्वेत होता है, काला नहीं होता। श्वेत रंग सतोगुण का प्रतीक

है। जब तक रज और तम का परित्याग करके सतोगुण की अवस्था में नहीं आते, तब तक आपको ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती। ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त किये बिना, आपके अन्दर सत्य ज्ञान भी नहीं अवतरित हो सकता। इसलिये चाहे सरस्वती का स्वरूप हो, चाहे गायत्री का स्वरूप हो, चाहे ब्रह्मा जी का स्वरूप हो, सभी को हँस पर विराजमान किया गया है। ऐसा न समझिये कि वह सचमुच हँस पर बैठते हैं। बेचारा हँस कितना बोझ उठायेगा? यह सब आलंकारिक वर्णन है।

## छन्दसां गायत्री।

गीता १०/३५

छन्दों में गायत्री कहा गया है, गीता में। उस गायत्री मन्त्र में सच्चिदानन्द परमात्मा की प्रार्थना की गई है। यह न समझें कि किसी देवी-देवता की प्रार्थना की गई है। वेद में परमात्मा को छोड़कर और किसी की भी भक्ति

नहीं की गई है। वेद में स्पष्ट कहा है—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।

न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥

अथर्ववेद १३/४/१६

परमात्मा दो नहीं, तीन नहीं, चार भी नहीं। पाँच नहीं, छः नहीं, सात भी नहीं। आज हिन्दू समाज में कितने परमात्मा हैं? सबको मालूम हैं। केले का पेड़ घर के आगे खड़ा है, उसमें भी पानी गिरा दिया, मत्था टेक लिया। पीपल का पेड़ खड़ा है, उसको भी साष्टांग प्रणाम कर लिया। ईंट-सीमेंट से चबूतरा बना लिया, वह क्या हो गया? कुल देवता या कुल देवी। उसको भी खीर-पूड़ी खिला दी। एक भिक्षुक आता है, जिसके अन्दर उस परमात्मा की साक्षात् चेतना तो है, उसको दुत्कार कर

भगा देते हैं, चलो भागो, नहीं मिलेगी भिक्षा। और जो चबूतरा बोल नहीं सकता, खा-पी नहीं सकता, उसके आगे भोजन रख देते हैं। यह कौन सी भक्ति है? कौन सा धर्म है? किस ग्रन्थ में लिखा है? ऐसा भ्रम इसलिये है क्योंकि सत्य का बोध नहीं है।

गायत्री मन्त्र में "भूः भुवः स्वः" का आशय है सत्, चिद्, आनन्द। "सवितुः" का अर्थ होता है सृष्टि को उत्पन्न करने वाले सूर्य आदि प्रकाशकों का भी प्रकाशक। "वरेण्यम्" का अर्थ होता है वरण करने योग्य, ध्यान करने योग्य। "देवस्य" का अर्थ होता है आनन्द स्वरूप। सत्, चित्, आनन्द स्वरूप परमात्मा का जो "भर्गः" तेजोमयी स्वरूप है, जिसको अरबी में नूर कहते हैं, उसको हम "धीमहि" अर्थात् धारण करें। "धियो यो न प्रचोदयात्" का भाव यह है कि वह परमात्मा हमारी बुद्धि

को उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव में प्रेरित करें।

वेद में तो कहीं पर नहीं लिखा है कि गायत्री कोई देवी है, जिसको हँस पर बैठाया गया है। यह तो कम बुद्धि वाले लोगों की समझ में आने के लिये ऐसा किया गया है। होता क्या है? कोई महापुरुष इस संसार में आता है और वह दिखाता है कि देखो वह चाँद है। दुनिया को चाँद को नहीं पकड़ना है, उसने अँगुली उठाकर दिखाई, तो दुनिया अँगुली को पकड़ लेती है कि यही सब कुछ है। हर महापुरुष ने उस सच्चिदानन्द परमात्मा की भक्ति की है, लेकिन दुनिया परमात्मा की भक्ति नहीं करती, उन महापुरुषों की भक्ति करती है। यह तो प्रतिद्वन्दिता हो गई। यदि परमात्मा की जगह कोई और आ जाये, तो वह परमात्मा से सीधे प्रतिद्वन्दिता खड़ी करता है। वेद कहते हैं—

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।

ऋग्वेद ७/३२/२३

जिनको भारतीय संस्कृति पर, अपने हिन्दुत्व पर आस्था होती है, वे वेद को अन्तिम प्रमाण मानते हैं। वेद क्या कहते हैं— हे परमात्मा! तुम्हारे समान "न त्वावां अन्यो" न कोई दूसरा था, न है और न कभी होगा। लेकिन हिन्दू समाज कहाँ मानने वाला है? उसके अन्दर तो अज्ञानता का अन्धकार भरा हुआ है। वह सत्य को स्वीकार करने में रुचि नहीं दिखाता। हमने अपनी कल्पना से सच्चिदानन्द परमात्मा के समानान्तर कितने परमात्मा खड़े कर दिये हैं।

भगवान शिव का फोटो देखिये, हमेशा ध्यान में बैठे रहते हैं। किसका ध्यान कर रहे हैं? क्या परमात्मा,

परमात्मा का ध्यान करेगा? भगवान शिव की पूजा क्या है? हम भगवान शिव के आदर्शों पर चलें। चित्र-पूजा की अपेक्षा चरित्र की पूजा ज्यादा श्रेयस्कर है। भगवान शिव के गुणों को तो कोई नहीं अपनाता कि भगवान शिव संसार से नाता तोड़कर हिमालय की गुफा में बैठे हैं। दिन-रात ध्यान में रहते हैं। उनकी पूजा तो वही है कि हम उनके पद-चिन्हों पर चलें। सांकल्पिक सृष्टि के प्रारम्भ में जो भी महान शक्तियाँ प्रकट हुईं, अवतरित हुईं, जिन्होंने दिन-रात परमात्मा का ध्यान किया, यदि आने वाली पीढ़ियाँ उनके पद-चिन्हों पर चलती तो यही उनकी सच्ची पूजा होती। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं देखा जाता। हनुमान जी के पुजारी कभी हनुमान जी के पद-चिन्हों पर नहीं चलते। हनुमान जी आदित्य ब्रह्मचारी हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी हैं, योगी हैं, वेदवेत्ता हैं।

उनके भक्तों को भी चाहिये कि उनके पद –चिन्हों पर चलें। तभी तो हनुमान जी के सच्चे भक्त कहे जायेंगे।

अभी बात गायत्री मन्त्र पर चल रही थी। गायत्री मन्त्र कहता है कि एक परमात्मा की भक्ति कीजिये। लेकिन जब गायत्री की मूर्ति बन जाती है, चित्र बन जाता है, तो उसी मूर्ति और चित्र की पूजा होने लगती है।

शिव का अर्थ है कल्याणकारी। शिव –स्वरूप जो कल्याणकारी परमात्मा है, धर्मरूपी बैल पर विराजमान होता है।

उसी तरह से सारी सृष्टि का रक्षक विष्णु है। विष्णु का अर्थ क्या है? जो सत्ता से सर्वत्र व्यापक हो, उसको विष्णु कहते हैं। सबकी रक्षा करने वाला, अपनी सत्ता से अणु-परमाणु में भी व्यापक रहने वाला परमात्मा चतुर्भुज



स्वरूप है। शंख, चक्र, गदा, पद्म द्वारा धर्म की रक्षा करता है। यानी असत्य का विनाश करने वाली शक्ति द्वारा, ज्ञान के उद्धोष द्वारा, सदाचार द्वारा, और ऐश्वर्य द्वारा संसार की वह रक्षा करता है, इसलिये उसको चतुर्भुज स्वरूप कहा गया। गरुड़ रूपी सत्य पर विराजमान रहता है, इसलिये उसको गरुड़ की सवारी करते हुए दिखाया गया है।

एक बात और है। महाराष्ट्र में गणेश पूजा बहुत होती है। एक-एक शहर के अन्दर लोगों की इतनी श्रद्धा है कि करोड़ों-अरबों रुपये गुजरात-महाराष्ट्र में गणेश पूजा में खत्म हो जाते हैं। भोला-भाला समाज गणेश जी की मूर्ति बनाता है। कुछ दिन पूजा करेगा, फिर मूर्ति को पानी में छोड़ आयेगा। यह कौन सी भक्ति है? कुछ दिनों तक तो मत्था टेकते रहे हैं, आरती-पूजा करते रहे हैं,

फिर उसी के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं। गणेश किसको कहते हैं, यह समझना होगा। देखिए, ज्ञान के लोप होने से किस तरह की विकृतियाँ हो जाती हैं। यदि प्रबुद्ध वर्ग इस पर विचार करेगा तो मालूम होगा कि समाज को ज्ञान की कितनी आवश्यकता है। वेद में कहा है—

**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।**

**प्रियाणां त्वां प्रियपतिं हवामहे।      यजुर्वेद २३/१९**

गणपति किसको कहते हैं? गण कहते हैं समूह को। गणनीय पदार्थों का जो स्वामी है, अनन्त ब्रह्माण्डों का जो स्वामी है, वह गणपति है।

प्रियाओं का प्रियपति कौन है? एक परमात्मा। गणेश जी का तो विवाह ही नहीं हुआ था।

**निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे।      यजुर्वेद २३/१९**

निधियों के निधिपति! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

वसो मम अहमजानि।

यजुर्वेद २३/१९

आप वसु हैं। सबको अपनी सत्ता में वास कराने वाले हैं।

गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।

यजुर्वेद २३/१९

आप तो अजन्मा हैं, सबको अपनी सत्ता में धारण करने वाले हैं। कहाँ गणनीय पदार्थों के स्वामी गणपति और कहाँ हाथी के मुख वाले गणेश जी? जिनकी सवारी आपको मालूम है। एक चूहे के ऊपर एक किलो वजन रख दीजिये, तो बेचारा दो कदम भी नहीं चल पायेगा। वास्तविकता क्या है?

भगवान शिव के पुत्रों का नाम है – गणेश और कार्तिकेय। दोनों योगिराज शिव के पुत्र हैं। भगवान शिव

के पुत्र गणेश जी विद्या के समुद्र हैं। इतने बुद्धिमान हैं कि उन्होंने एक यान बनाया था, जिसका नाम ही "मूषक" था। उस मूषक यान पर बैठकर वे लोक-लोकान्तरों की यात्रा किया करते थे। ऐसा नहीं है कि यह जो चूहा है, उस पर बैठते थे। यह चूहा बेचारा क्या ढोयेगा।

यदि हम भारद्वाज ऋषि के विमानशास्त्र को पढ़ें, तो पता चलेगा कि उस समय भी उन्नत दशा में विमान विद्या थी। विमानों का निर्माण किया जाता था, और ऋषि, महर्षि, तथा मनीषीजन उन पर यात्रा किया करते थे।

हिन्दू समाज से पूछिए, कहेंगे कि हम ३३ करोड़ देवी-देवताओं को मानते हैं। कोटि का अर्थ क्या होता है? प्रकार। देवता किसको कहते हैं, यह तो कोई समझता ही नहीं। धर्मग्रन्थों में कहा गया है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथि देवो भव, आचार्य देवो भव।

तैत्तरीय उपनिषद् प्रथमा वल्ली/एकादशोऽनुवाकः

माता इसलिये देवता है, क्योंकि उन्होंने जन्म दिया है। जब आप बच्चे होंगे, आप कपड़े गीले करते होंगे, तो पूरी रात आपकी माँ स्वयं गीले कपड़े पर सोती रही है और आपको अच्छे कपड़े पर सुलाती रही है। यह माँ की ममता है, इसलिये उसको देवता कहा है। पिता देवता है क्योंकि उसने हमारा पालन-पोषण किया है। अतिथि देवता है क्योंकि उसने धर्मोपदेश देकर अन्धकार से निकाला है। आचार्य देवता है क्योंकि उसने ज्ञान दिया है। ये तो प्रत्यक्ष चेतन देवता हैं। इनकी तो कोई पूजा नहीं करता, इनको तो प्रणाम भी नहीं करता। काल्पनिक कहानी गढ़ ली है ३३ करोड़ देवताओं की।

३३ देवता क्या हैं?

अष्ट वसु— वसु उसे कहते हैं, जिसमें या जिनके द्वारा प्रजा वास करे। पाँच तत्व, सूर्य, चन्द्र, और नक्षत्र— ये आठ वसु कहलाते हैं।

द्वादश आदित्य— वर्ष के बारह महीने क्योंकि ये सबकी आयु को हर लेते हैं।

एकादश रुद्र— दस प्राण और ग्यारहवाँ मन।

यज्ञ— यज्ञ क्या है? अभी हम लोग यज्ञ कर रहे हैं। यह कौन सा यज्ञ है? ज्ञान यज्ञ। हम लोग इस समय अपने अन्तःकरण रूपी कुण्ड में ज्ञान यज्ञ की आहुतियाँ डाल रहे हैं। यह है यज्ञ। यज्ञ को प्रजापति कहा गया है, क्योंकि इसके द्वारा समाज का निर्माण होता है।

इन्द्र— जिसको कहते हैं विद्युत। अभी विद्युत चली

जाये, तो क्या होगा? न मैं आपको देख पाऊँगा, न आप मुझे देख पायेंगे। इन्द्र का अर्थ होता है ऐश्वर्य। यह विद्युत जो है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य का कारण है।

ये तैंतीस जड़ देवता हैं। इन तैंतीस जड़ देवताओं से परे चौंतीसवाँ उपास्य देव परमात्मा है। कहीं भी नहीं लिखा कि ३३ जड़ देवताओं के पीछे-पीछे भागो।

## एकमेव अद्वितीयं।

## ऐतरेय ब्राह्मण

उपनिषदों का कथन है कि परमात्मा एक है। उसके समान न कोई दूसरा था, न है, और न होगा। अनेक देवों की उपासना न वेद कहते हैं, न उपनिषद कहते हैं, न दर्शन शास्त्र कहते हैं, न गीता कहती है, और न किसी अन्य आर्ष ग्रन्थ में इसका प्रमाण है। एक मुस्लिम सब कुछ करेगा, लेकिन एक अल्लाह को छोड़कर किसी अन्य

की भक्ति नहीं करेगा। क्रिश्चियन भी यही करता है। सिख भी एक परमात्मा को मानता है, लेकिन सनातनी कहा जाने वाला पौराणिक हिन्दू समाज सच्चिदानन्द परब्रह्म से विमुख हो बैठा है।

रूपक अलंकार की भाषा को न समझने से वह काल्पनिक परमात्मा की भावना में जुड़ा हुआ है। सत्य रूपी परमात्मा बहुदेववाद से अलग है। आप अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लीजिये और एक पेड़ पर पत्थर मारिये। टोकरे के टोकरे पत्थर मार दीजिए। जब शाम को आप पट्टी खोलेंगे तो कितने फल गिरेंगे, कुछ भी नहीं, क्योंकि आपका लक्ष्य व्यर्थ था। आपने तो समझा ही नहीं कि परमात्मा किसको कहते हैं।

हमारी भक्ति कैसी होनी चाहिये? जिसकी आप भक्ति कर रहे हैं, उसके बारे में बोध ही नहीं है कि



परमात्मा कौन है, कैसा है, कहाँ है, कितने हैं? फिर आपका निशाना तो व्यर्थ चला जायेगा। इसलिये भक्तों की संख्या तो बहुत दिखाई देती है, किन्तु उसको पाने वाले विरले होते हैं।

यमाचार्य ने नचिकेता से कहा है – "हे नचिकेता! पहले तो यह ज्ञान सुनने को नहीं मिलता और यदि सुनाने वाला मिल जाये तो सुनने वाले नहीं मिलते।" अभी आप देख रहे हैं न, चौथाई मण्डप भी नहीं भरा है। यदि यहाँ नृत्य, संगीत, चित्रपट (सिनेमा) का कार्यक्रम हो जाये, तो कितनी भीड़ लगेगी? खड़े होने की जगह नहीं रहेगी। संसार बाहर की तरफ भागता है। अपने स्वरूप को जानने वाला, समझने वाला कोई विरला ही होता है।

शुकदेव जी ब्रह्मज्ञान लेने के लिये जनक जी के

पास गये। जनक जी ने उनकी परीक्षा लेने के लिये द्वारपालों को कह दिया – "देखो! शुकदेव जी आ रहे हैं, उनको अन्दर नहीं घुसने देना। तीन दिन बाहर बैठाये रखना।" शुकदेव जी राजमहल के दरवाजे के बाहर तीन दिन तक बैठे रहे, कोई पानी पूछने वाला नहीं, भोजन के लिये पूछने वाला नहीं। अन्त में राजा जनक आते हैं और स्वागत करके अन्दर ले जाते हैं। यह परीक्षा ली जा रही थी कि ब्रह्मज्ञान को पाने के लिये कितनी प्यास है।

यहाँ तो आपको जबरन सुनाया जाता है, जबरन बुलाया जाता है, वह भी हाथ जोड़-जोड़ कर। भाई साहब! हमारे यहाँ कार्यक्रम हो रहा है, चलिए। कोई आता है, तो क्या कहता है? एहसान जताता है कि हम आपके कार्यक्रम में आ गये।

बिना प्यास के पानी दिया जाये, तो उसका महत्व

किसी को मालूम नहीं होता है। आज के भौतिकवादी युग में विरले लोगों को चिन्ता है कि हमें परमात्मा का ज्ञान चाहिये। हाँ, कहीं चमत्कार हो जाता है, तो उसके पीछे दुनिया भागी जायेगी। आपको विदित ही है कि मथुरा में तेल-शोधक कारखाना है और उसमें बरौनी से तेल आता है। पाईप लाइन अन्दर ही अन्दर गंगा जी में से होकर आती है। एक बार पाईप में छेद हो गया, तेल गंगा के ऊपर बहने लगा, और सूर्य की धूप से उसमें आग लग गई, तो बहुत बड़ा जन समूह इकट्ठा हो गया। लोगों ने स्नान किया, दान-पुण्य किया कि देखो! गंगा जी में आग लग गई है। दुनिया को चमत्कार चाहिये। परमात्मा क्या है? परमात्मा कहाँ है? परमात्मा कैसा है? हम कौन हैं? आये कहाँ से हैं? यह शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् हमें जाना कहाँ है? इसको जानने की जिज्ञासा

सांसारिक लोगों के पास नहीं होती है।

पारब्रह्म तो पूरन एक हैं, ए तो अनेक परमेश्वर कहावें।

अनेक पंथ सब जुदे जुदे, और सब कोई शास्त्र बोलावें।।

एक परमात्मा को छोड़कर अनेक के पीछे दुनिया भागती फिरती है। एक वृक्ष है, उसकी जड़ में पानी दे दीजिये, तो पूरा वृक्ष हरा-भरा रहेगा। तने, डालियाँ, फल, फूल सभी हरे रहेंगे। पत्ते-पत्ते पर पानी देते रहेंगे, तो कभी भी वृक्ष हरा-भरा नहीं होगा।

बारह साल का बच्चा भी जानता है कि परमात्मा कितने हैं? सब कहते हैं कि परमात्मा एक है, फिर एक को छोड़कर अनेक की भक्ति क्यों? पतिव्रता के कितने पति होते हैं? सबको मालूम है। योगेश्वर श्री कृष्ण जी कहते हैं- "हे अर्जुन! यदि तू उसको पाना चाहता है, तो

अनन्य प्रेम द्वारा वह मिलेगा।"

**पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।**

**गीता ८/२२**

अनन्य का अर्थ क्या होता है? जिसमें उसके सिवाय कोई दूसरा न हो। जब परमात्मा एक है, तो उसकी जगह हमने प्रतिद्वन्द्वी क्यों खड़ा कर लिया? गुरु गोविंद सिंह जी को जब परमात्मा कहा जाने लगा, तो उन्होंने बहुत कठोर शब्दों में कहा—

**जो नर मोहे परमेश्वर उचरहिं, ते घोर नरक में परहीं।**

फिर भी लोगों ने कहना बन्द नहीं किया। आज आपको तो मालूम ही है कि गली-गली में किसके मन्दिर बन गये, साई बाबा के। दुनिया चमत्कार देखती है। साई बाबा का फोटो लगाकर दुनिया उनको परमात्मा मानती

है। वह "सबका मालिक एक" कहते हैं। वह खुद नहीं कहते कि मैं ही एक परमात्मा हूँ। लेकिन दुनिया सांई बाबा को परमात्मा मानेगी, और तो और बापूजी को भी परमात्मा मानकर उनकी भी पूजा होने लगी। कहने का तात्पर्य क्या है? सृष्टि में यदि कोई महान पुरुष होता है, तो उसके गुणों की पूजा कीजिए। उसको परमात्मा की जगह पर मत बैठाइए।

परमात्मा ने सृष्टि को बनाया है, परमात्मा में अनन्त गुण हैं। उन गुणों की कुछ छाया महापुरुषों के अन्दर आती है। हमें इनके पद-चिन्हों पर चलना चाहिये कि जिस मार्ग पर चलकर इन्होंने इस मन्जिल को पाया है, हम भी उस मन्जिल को प्राप्त करें। हम "अहम् ब्रह्मास्मि" की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। हम "अन् अल् हक" की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन खुद

वह नहीं बन सकते। वह तो अपने में एक अकेला है। परमात्मा के प्रति प्रेम की निष्ठा कम हो जाने से आज संसार दुखी है। दुखों के मूल में क्या है? तृष्णा! यह क्यों पैदा होती है? अज्ञानता के कारण।

अभी कुछ आलंकारिक व्याख्यायें और हैं, जिनको मैं संक्षेप में बता देता हूँ। लक्ष्मी जी की सवारी क्या बताई गई है? उल्लू। लक्ष्मी जी को उल्लू पर क्यों बैठाया जाता है? उल्लू की एक विशेषता यह होती है कि उसको दिन में दिखाई नहीं पड़ता, रात में ही दिखाई पड़ता है। यदि किसी व्यक्ति के पास अनावश्यक धन हो जाता है, तो वह भी अपना विवेक खो देता है अर्थात् दिन में भी उसको दिखाई नहीं पड़ता। अहंकार में वह इतना पागल हो जाता है कि मेरे जैसा कोई नहीं।

यदि मनुष्य रात के अन्धेरे में छत पर खड़ा हो जाये

और आकाश की तरफ देखे, तो उसका अहंकार अपने आप समाप्त हो जायेगा। आकाश में अपनी पृथ्वी से लाखों गुना बड़े कितने तारे घूम रहे हैं। यह जो सूर्य है, पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा है, और हमारा सूर्य तो आकाशगंगा का सबसे छोटा सूर्य है। हमारी आकाशगंगा में इस सूर्य जैसे करोड़ों सूर्य हैं, और ब्रह्माण्ड में जितनी आकाशगंगाओं का पता चला है, उसमें हमारी आकाशगंगा (निहारिका) एक छोटी आकाशगंगा है। आप कल्पना नहीं कर सकते, इस नश्वर ब्रह्माण्ड में कितने सूर्य हैं, कितनी पृथ्वियाँ हैं, और हम पृथ्वी के एक छोटे से देश में रहते हैं। देश के भी एक नगर में रहते हैं। हमारा क्या वजूद है?

मनुष्य चार दिन का यौवन पा लेता है, थोड़ा सा पद पा लेता है, थोड़ा सा धन पा लेता है, तो वह



सर्वशक्तिमान की सत्ता से अपने को विमुख कर लेता है। कितनी बड़ी भूल है? जब पक्षी पिंजड़े से उड़ जाता है, तो उसका क्या महत्व रह जाता है, कुछ भी नहीं? इस शरीर को अग्नि की लपटों के हवाले कर दिया जाता है। लेकिन अहंकार में पागल यह प्राणी, यह जीव विचार नहीं कर पाता कि रे मानव! तू सर्वशक्तिमान की सत्ता से विमुख होकर अपने जीवन के अनमोल पलों को खो रहा है। किस धन पर तू इतराता है? यह धन तो कुछ है ही नहीं।

कल्पना कीजिये कि किसी के पास एक ट्रक हीरे हो जायें। ये हीरे किससे बनते हैं? कोयले से। कोयला किससे बनता है, लकड़ी से। आखिर लकड़ी का काला कोयला ही तो दबकर अग्नि के संयोग से हीरा बन जाता है। उसमें कौन सी विशेषता है? सोना क्या है? मिट्टी है।

लेकिन जिसके पास ज्यादा सोना हो, वह अपने को बड़ा समझता है। ये हीरे, मोती, सोना, चाँदी क्या हैं? ये सब कुछ मिट्टी ही तो है। मनुष्य इसी को पाकर खुश होता है। सारा ब्रह्माण्ड तो नश्वर है। सूरज, चाँद, सितारे, पृथ्वी, हमारा शरीर सब कुछ काल के गाल में समा जाने वाले हैं। इन नश्वर वस्तुओं पर मनुष्य को कभी भी अहंकार नहीं करना चाहिए।

हाँ, यदि मनुष्य सर्वशक्तिमान परमात्मा की सत्ता के बारे में विचार करे कि वह अनादि है, अखण्ड है, सत्, चिद्, आनन्द का स्वरूप है, और मेरा जीव ८४ लाख योनियों में भटकता रहा है। मैं उस सच्चिदानन्द परमात्मा को क्यों न प्राप्त करूँ।

जब मनुष्य के पास अनावश्यक धन हो जाता है, तो वह दुर्योधन की तरह अहंकारी हो जाता है। दुर्योधन

की आदत क्या थी? वह भीष्म पितामह का भरी सभा में अपमान करता था। द्रोणाचार्य का अपमान कर देता था, विदुर का कर देता था, श्री कृष्ण जी का भी कर दिया था। वह किसी को भी सम्मानित करना नहीं जानता था। इसलिए आलंकारिक रूप में यही कहा जाता है कि लक्ष्मी जी पर उसका पूरा अधिकार था। यानी लक्ष्मी जी की सवारी उल्लू किस प्रकार है? जिस तरह से उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार जिस व्यक्ति के पास ज्यादा धन आ जाता है, उसका विवेक नष्ट हो जाता है, और उसको सत्य-असत्य की पहचान नहीं होती, इसलिए लक्ष्मी की सवारी उल्लू कही गयी है।

ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को हँस पर क्यों बैठाया गया है? क्योंकि जो हँस की तरह अपने हृदय को स्वच्छ कर लेगा, सतोगुण से युक्त हो जायेगा, उसके

पास विद्या का प्रकाश हो जायेगा। हाथों में वीणा क्यों पकड़ाई गई है? क्योंकि वीणा संगीतमयी भक्ति का प्रतीक है।

संगीत क्या है? प्राचीनकाल में संगीत परमात्मा की आराधना के लिये था और आजकल का संगीत विलासिता के लिये है। संगीत जब विलासिता के लिये प्रयोग होने लगता है, तो समझ लीजिये कि संसार के विनाश की घड़ी आ गई है। हनुमान जी के साथ-साथ जो भी महापुरुष हुए, चाहे वह नारद जी हों, या सरस्वती जी हों, दोनों के हाथों में वीणा है। यह दर्शाने के लिये कि ज्ञान के साथ-साथ भक्ति का समन्वय होना चाहिये। भक्ति है तो आपके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा, इसीलिये सरस्वती जी के हाथों में वीणा पकड़ाई गई है। यह आलंकारिक रूप से वर्णन किया गया है,

वास्तव में ऐसा नहीं है।

अब मैं संक्षेप में दुर्गा जी का आलंकारिक वर्णन कर देना चाहूँगा। जब दशहरे का त्योहार होता है, मोहल्ले-मोहल्ले में दुर्गा जी की अष्टभुजी-दशभुजी प्रतिमायें बनाई जाती हैं। लोग दुर्गा जी का पाठ करते हैं, यह दर्शाने के लिये कि दुर्गा जी ने महिषासुर राक्षस का वध किया था। अब प्रश्न यह है कि महिषासुर राक्षस कौन है? "महिष" कहते हैं भैंसे को। भैंसे का रंग क्या होता है? काला। किसी ने सफेद भैंसा तो आज तक देखा नहीं होगा। जिस तरह से हँस का रंग सफेद होता है, उसी तरह से भैंसे का रंग काला होता है। शंकर जी का जो बैल है, वह भी सफेद है। श्वेत रंग सत्य का प्रतीक है। श्वेत रंग शान्ति का प्रतीक है। उसी तरह से काला भैंसा तमोगुण का प्रतीक है। तम में अज्ञानता है।

मारकण्डेय पुराण में वर्णित है कि जब दुर्गा जी का महिषासुर राक्षस से युद्ध हो रहा था, उस समय उसकी सेना में रक्तबीज नामक एक योद्धा था, जिसका शिर कटते ही जितनी बूँदे धरती पर गिरती थीं, उतने ही नये रक्तबीज पुनः पैदा होकर युद्ध करने लगते थे। उनको मारने के लिये दुर्गा जी के तन से काली जी प्रकट हुईं। उन्होंने रक्तबीज का शिर काटकर खप्पर में रक्त भरकर ऊपर ही ऊपर पी लिया और एक बूँद भी धरती पर गिरने नहीं दिया। इस प्रकार रक्तबीज राक्षस का पतन हुआ।

इसका गुह्य आशय इस प्रकार है— सांसारिक सुखों की वासना का बीज ही वह रक्तबीज रूपी राक्षस है, जो जीव के चित्त में विद्यमान होकर उसे बारम्बार जन्म – मरण के चक्र में भटकने के लिये विवश करता है। इसके

विनाश के लिये दैवी सम्पदा (दुर्गा) से प्रकट शक्ति (काली जी) की भयंकर ज्ञान रूपी तलवार चाहिए, जो वासना बीज को जड़-मूल से ध्यान रूपी खप्पर में पीकर नष्ट कर दे। ऐसा होने पर ही भव-रोग का बन्धन समाप्त हो सकेगा।

गीता में तीन गुणों की विवेचना बहुत अच्छी तरह से की गई है। सतोगुण की राह पर चलकर मनुष्य आत्मिक-लाभ प्राप्त कर लेता है, आत्मज्ञानी बनता है, ब्रह्मज्ञानी बनता है। रजोगुण में आसक्ति में बन्धकर कर्म करता है। तमोगुण से ग्रसित होकर अज्ञानता के अन्धकार में भटकता है और विनाश को प्राप्त होता है।

**ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।**

**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥**

## गीता १४/१८

तामसिक व्यक्ति हमेशा झगड़ालू होगा। वह माँस का सेवन करेगा। जरा सी बात पर लड़ने-मरने के लिये तैयार होगा। महिषासुर राक्षस है। उसके अत्याचार से सभी देव वर्ग पीड़ित हैं। देव वर्ग किसको कहते हैं? जो सत्य को जानते हैं, सत्य को मानते हैं, और सत्य का आचरण करते हैं, वे देवता हैं।

**ये सत्यम् आचरन्ति ते देवाः अनृतम् मनुष्याः।**

जो सत्य का आचरण करते हैं, वे देवता हैं। जो झूठ बोलते हैं, वे मनुष्य हैं, और जो हमेशा झूठ बोलते हैं, वे असुर हैं। महिषासुर तमोगुण का प्रतीक है, अज्ञान का प्रतीक है। उसको किसने मारा? दुर्गा जी ने। महिषासुर के आतंक से सारा देव समूह उस समय त्रस्त हो गया।



सभी देवताओं की सभा हुई और उसमें महिषासुर के ऊपर विचार किया गया कि यह तो किसी के मारे नहीं मर रहा है। इसका विनाश कैसे किया जाये? अन्त में सभी देवों के शरीर से एक तेज निकला, जिसने नारी का रूप धारण कर लिया। उसको पार्वती जी ने अपने सिंह की सवारी दी। विष्णु भगवान ने अपना चक्र दिया। शंकर जी ने अपना त्रिशूल दिया। ब्रह्मा जी ने अपना पाश दिया। इसी तरह से सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र दिये और उसने महिषासुर राक्षस का वध कर दिया। अब इसको आलंकारिक रूप से समझिये।

तमोगुण के घिर जाने पर ही अज्ञानता होती है। जब मनुष्य माँस का सेवन कर ले, नशीले पदार्थों का सेवन कर ले, तो उसके अन्दर से विवेक चला जाता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि मैं क्या कर रहा हूँ। तमोगुण

रूपी राक्षस का वध कौन करेगा? देवता, जो सतोगुण के प्रतीक हैं।

आपके शरीर में दो सम्पदायें हैं— दैवी और आसुरी। दो विचार हैं— दैवी विचार और आसुरी विचार। यानी सतोगुण रूपी देवताओं के शरीर से निकली हुई शक्तियों ने एकत्रित होकर दस भुजाओं वाली दुर्गा का रूप धारण किया। दस भुजायें क्या है? पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों का राजा कौन है? मन। जिसने सतोगुण भावना स्वीकार कर अपने मन रूपी सिंह को जीत लिया, मन पर सवारी करने लगा, वही अज्ञान रूपी महिषासुर राक्षस का वध कर सकता है। इसलिये दुर्गा जी को सिंह पर बैठा हुआ दिखाया गया है। वह सिंह क्या है? मन। जिसने अपने मन को जीत लिया, उसने संसार को जीत लिया, "मन

जीते जग जीते"। संसार इसका आशय नहीं समझता।

चारों वेदों में कहीं भी "दुर्गा" शब्द नहीं है, लेकिन एक काल्पनिक आलंकारिक वर्णन को यथार्थता का रूप दे दिया गया। धर्मग्रन्थों में छिपे हुये रहस्यों को वास्तविक रूप से न समझने के कारण ये भ्रान्तियाँ हो जाती हैं। कहीं अष्टभुजी कहा गया। अष्टभुजी का अर्थ क्या होता है? जैसे आठ दिशाएँ हैं और आठों दिशाओं में यदि सत्य की सत्ता है, तो उसी सर्वशक्तिमान या ज्ञान के प्रकाश की सत्ता को दर्शाने के लिये अष्टभुजी स्वरूप की कल्पना की गई है। यह सभी रूपक हैं। किस तरह से भिन्न-भिन्न देवताओं को किसी न किसी सवारी पर बैठाया गया। उसका भी अलग-अलग रूपक है। वास्तविकता यह है कि हम सत्य को मानें।

समुद्र का मन्थन करके चौदह रत्न निकालने की

बात आती है। चौदहवाँ रत्न अमृत है और उस अमृत से देवताओं का अमर होना कहा गया है। समुद्र क्या है? यह शरीर ही समुद्र है। देवता और असुर, दोनों मिलकर समुद्र का मन्थन करते हैं। अर्थात् हमारे अन्दर दो विचार हैं— दैवी और आसुरी।

देवता वासुकी नाग की रस्सी बनाते हैं, मन्दराचल को पहाड़ बनाते हैं। मन्दराचल क्या है? वह मेरुदण्ड है। आप जानते हैं कि आठ चक्रों से युक्त जो सुषुम्ना है, वह मेरुदण्ड के अन्दर से गयी है। इसी सुषुम्ना के आठ बिन्दु आठ चक्र कहलाते हैं। इसको मथानी बनाकर मथा जाता है। देवता पूँछ की तरफ लगते हैं और असुर मुँह की तरफ लगते हैं। पूँछ क्या है? विनम्रता का प्रतीक है। सतोगुण मनुष्य में विनम्रता देता है और तमोगुण मनुष्य में अहंकार देता है। मन्थन का क्या अर्थ है? योगरूपी

अभ्यास के मन्थन से जब आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त हो जाती है, समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो अनेक सिद्धियों रूपी उपहारों (रत्नों) के साथ अमृत की प्राप्ति होती है।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति।

यजुर्वेद ३१/१८

उस परमात्मा को जानकर ही मृत्यु के बन्धन से छूटा जाता है। अमृत क्या है? जो मनुष्य को मरण से छुटकारा दिला दे, वह है अमृत। देवों ने अमृत का पान किया, और असुरों ने मदिरा का पान किया अर्थात् अज्ञान का पान किया। अज्ञान की मदिरा मनुष्य को बेसुध कर देती है, भुला देती है कि वह कौन है। और अमृत बताता है—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।

## श्वेताश्वतर उपनिषद २/५, यजुर्वेद ११/५

अमृत पुत्र कौन है? जो अमृत का पान करता है। वह अमृत क्या है? आत्मज्ञान रूपी अमृत, ब्रह्मज्ञान रूपी अमृत, जिसके द्वारा हम जान जायें कि हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं, इस शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् हमें जाना कहाँ है? हमारी आत्मा का एक अनादि प्रियतम कौन है, कहाँ है, कैसा है? यह तो रूपक अलंकार के माध्यम से समुद्र-मन्थन के बारे में मैंने बहुत संक्षेप में कहा।

आवश्यकता तो यह है कि हम अपने हृदय मन्दिर में उस परब्रह्म प्रियतम को बसायें। लेकिन इसके पहले हम यह जानें कि वह कहाँ है? कौन है? कैसा है? क्या इन रूपकों में बैठा है या इन सबसे परे है? इन तथ्यों पर कल विचार होगा। अधिक से अधिक संख्या में लोग इन

बातों को जानें, ताकि अध्यात्म की ज्योति उनके हृदय में प्रवाहित हो सके। ध्यान रहे, दिन बीते जा रहे हैं, रात बीती जा रही है, हमारी उम्र पल-पल बीती जा रही है। जो समय बीत गया, किसी भी कीमत पर हमें प्राप्त होने वाला नहीं है, चाहे हम अरबों रुपये क्यों न खर्च कर दें। इसलिए यह मानव तन मिला है, उस परमतत्व को जानने के लिये। हम जानें कि वह परमात्मा कहाँ है, कैसा है?



## तृतीय अध्याय

### परब्रह्म कहाँ है?

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिसं यस्य देवाः।

यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋग्वेद १०/१२२/२

जिसकी शरणागति ही अमृत्व प्रदान करने वाली है, जिससे दूर होना मृत्यु को निमन्त्रण देना है, जो आत्म-बल को देने वाला है, आत्म-स्वरूप को उजागर करने वाला है, उस सच्चिदानन्द परब्रह्म के चरणों में प्रणाम है।

हर प्राणी उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाना चाहता है, लेकिन प्रश्न तो यह है कि वह है कहाँ? बच्चे-बच्चे से पूछिए। हर कोई कह देता है— "क्या दिखाई नहीं पड़ता? सूरज, चाँद, सितारे, पृथ्वी, हमारे शरीर—



सबके अन्दर वही तो रम रहा है। कण-कण में वही है।" हर मनीषी के अन्दर जिज्ञासा हो सकती है की यदि वह कण-कण में रम रहा है, सबके अन्दर वही है, तो यह संसार उसके गुणों के विपरीत क्यों है?

यदि वह हर प्राणी के अन्दर बैठा हुआ है, तो हर प्राणी परमात्मा की तरह सर्वज्ञ क्यों नहीं होता ? परमात्मा की तरह जन्म-मरण से रहित क्यों नहीं होता? परमात्मा की तरह निर्विकार क्यों नहीं होता? परमात्मा की तरह आनन्दमयी क्यों नहीं होता? परमात्मा आनन्द का सागर है और संसार दुखों के दावानल में जल रहा है, क्यों? संसार के कण-कण में परब्रह्म विराजमान होकर दृष्टिगोचर हो रहा है, फिर भी संसार दुखों की अग्नि से त्राहि-त्राहि कर रहा है। ऐसी विडम्बना क्यों है?

पहले तो यह जानना होगा कि परमात्मा है कौन ?

कल का विषय था परमात्मा कितने हैं? एक स्वर से यह निश्चित होता है कि परमात्मा तो एक ही है और सभी देवी-देवताओं से परे एक अद्वितीय परमात्मा है, जिसके लिये उपनिषदों ने कहा है—

**एकं एव अद्वितीयं।**

**ऐतरेय ब्राह्मण**

वह एक है। उसके समान न कोई दूसरा था, न है, और न कभी हो सकेगा। वह एक कैसे है, पुनः इस तथ्य पर विचार करते हैं।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में तीन पुरुषों की विवेचना है। सोलहवें और सत्रहवें श्लोक में क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष, और अक्षरातीत का वर्णन किया गया है।

**द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च। गीता १५/१६**

इसकी व्याख्या में अधिकतर विद्वानों ने कहा है कि

क्षर शरीर है। किसी ने क्षर प्रकृति को माना, किसी ने अक्षर जीव को माना। प्रश्न यह खड़ा होता है कि पुरुष का अर्थ ही है—

**पुरुषं पुरिश्य इत्याचक्षीरन्।**

**निरुक्त १/१३**

जो ब्रह्मपुरी में शयन कर रहा हो, जो सर्वत्र पूर्ण हो, उसको पुरुष कहते हैं। प्रकृति शब्द स्त्रीलिंग होता है। उसके लिए पुरुष शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। प्रकृति लीला कर रही है, यह कहा जायेगा। प्रकृति लीला कर रहा है, यह कोई भी नहीं कहेगा। इसलिये स्वाभाविक है कि क्षर या अक्षर शब्द का प्रयोग प्रकृति के लिये नहीं किया जा सकता।

अब यह क्षर कौन है? अक्षर कौन है? और उससे परे जो उत्तम पुरुष अक्षरातीत है, वह कौन है? जो

कूटस्थ है, वह अक्षर है, और इन दोनों से परे—

**उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः।**

**गीता १५/१७**

जो परमात्मा कहलाने की शोभा को प्राप्त करने वाला है, वह है एकमात्र उत्तम पुरुष अक्षरातीत।

अब वह उत्तम पुरुष कौन है? कल का विषय था कि वह एक है। अब जब वह एक है, तो ये तीन पुरुष कहाँ से हो गये? एक तो एक ही होना चाहिए। तीन पुरुषों की विवेचना के लिये हमें एक दृष्टान्त का सहारा लेना पड़ेगा। छोटा सा दृष्टान्त है, जिससे सबके मन-मस्तिष्क में यह बात बैठ जायेगी, क्योंकि दर्शन का विषय बहुत गूढ़ होता है, बिना दृष्टान्त के हर पुरुष उसको समझने का सामर्थ्य नहीं रखता।

प्रधानमन्त्री को ले लीजिये। जब वह घर पर रहते हैं, तो किसी बात पर पत्नी उनसे नोंक-झोंक कर लेती है कि आपने यह कार्य नहीं किया, आप यह सामान नहीं लाये। उनका पोता उनके कन्धे पर चढ़कर हँसी भी कर सकता है। बेचारे प्रधानमन्त्री कुछ नहीं बोल सकते। न पत्नी को डाँट सकते हैं, न पोते को डाँट सकते हैं, उल्टा पत्नी से कोई झड़प सुनने को मिल सकती है। भले ही वह देश के प्रधानमन्त्री हैं, लेकिन घर में वे किसी के पति हैं, किसी के दादाश्री हैं, तो किसी के पिताश्री हैं।

किन्तु जब वे अपने कार्यालय में बैठे होते हैं, तो जो पत्नी घर में झगड़ रही थी, वह दूर बैठेगी। प्रधानमन्त्री के बगल में भी बैठने का अधिकार नहीं रखती। जो पोता कन्धे पर बैठकर उछल-कूद मचा रहा था, उसको भी बैठने नहीं दिया जायेगा। वहाँ एक सत्ता का रूप होगा।

कारण क्या है? एक मर्यादा है। दो रूप हो गये। एक प्रेम और आनन्द का, और एक सत्ता का। एक और रूप है निद्रा का। जब वह सो जाते हैं, तो क्या होता है? निद्रा में सोते हैं, सपने देखने लगते हैं। सपने देखते-देखते किसी भयानक जंगल में पहुँच जाते हैं। उस जंगल में सामने एक भयानक सिंह आ जाता है। अभी वह दो फर्लांग दूर होता है कि देखते ही इनके प्राण सूख जाते हैं। उसको छलांग मारने में कितनी देर है? अब वे घबराकर बिस्तर से उठ जाते हैं। नींद टूटती है, तो देखते हैं कि यहाँ तो शेर है ही नहीं।

पुरुष तो एक ही है, लीला रूप में अलग-अलग है— एक प्रेम का स्वरूप, एक सत्ता का स्वरूप, और एक स्वप्न का अज्ञानमय स्वरूप। इसी तरह से परम पुरुष कहलाने की शोभा केवल एक को प्राप्त है और वह है

परमात्मा।

पारब्रह्म तो पूरन एक है, ए तो अनेक परमेस्वर कहावें।

अनेक पंथ शब्द सब जुदे-जुदे, और सब कोई शास्त्र बोलावें।।

किरन्तन ६/७

संसार में आज हजारों पन्थ-पैड़े खड़े हो गये हैं। सबने अपने अलग-अलग इष्ट बना लिये हैं। कोई किसी की पूजा कर रहा है, कोई किसी की। जिसे वेद ने एक अद्वितीय परमात्मा माना, उस सच्चिदानन्द परमात्मा के बारे में कोई जानता ही नहीं है। उसी सच्चिदानन्द परमात्मा को सारा संसार इसी सृष्टि के कण-कण में माने बैठा है।

तीन पुरुषों की जब तक विवेचना नहीं होगी , परमात्मा का स्वरूप तब तक यथार्थ में समझ नहीं

आयेगा। जहाँ सत्य है, वहाँ ही चेतनता है, और वहीं आनन्द हैं। वह सत्, चिद्, और आनन्द है, और यह जगत असत्, जड़, और दुःखमयी है। अज्ञानता कहाँ होगी? माया में। भ्रम कहाँ होगा? माया में। उपनिषदों ने ब्रह्म के विषय में कहा है—

**प्रज्ञानं ब्रह्म।**

**ऐतरेयोपनिषद् ५/३/३**

ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप है।

अज्ञानता किसको होती है? जीव को होती है। ब्रह्म में कभी अज्ञानता नहीं होती। यहाँ विवेचना चल रही है कि क्षर, अक्षर, और उत्तम पुरुष क्या है? उत्तम पुरुष अक्षरातीत प्रेम और आनन्द का स्वरूप है, सत्, चिद्, और आनन्दमयी है। देखिए, मेरी दो भुजाएँ हैं। एक भुजा है सत्, और एक भुजा है आनन्द स्वरूप, और यह दिल



है चिद्धन स्वरूप। चिद्धन से ही सत् है और चिद्धन से ही आनन्द है। यदि मेरे जीव को इस शरीर से निकाल दिया जाये, तो मेरी दोनों भुजायें निरर्थक हो जाएँगी। सच्चिदानन्द परब्रह्म सत्, चिद्, और आनन्द का स्वरूप है। एक तरफ वह आनन्द के स्वरूप में क्रीड़ा करता है, तो दूसरी ओर सत्ता द्वारा असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन करता है।

आकाश में सूर्य है। सूर्य पर पृथ्वी की धूल नहीं जा सकती। सूर्य में जो भी पदार्थ रहेगा, सूर्य के समान ही होगा। पृथ्वी अलग है, सूर्य अलग है। वह दृष्टा होकर देख रहा है। उसी तरह से जो निर्विकार परमात्मा है, वह अक्षर और अक्षरातीत इस जगत से सर्वथा परे है।

क्षर क्या है?

## क्षरः सर्वाणि भूतानि।

गीता १५/१६

भूतानि शब्द से बहुत गहरा आशय है। भूत में स्थूल भूत, सूक्ष्म भूत सभी आ जायेंगे। दृश्य-अदृश्य जितने पदार्थ हैं, सभी इसके अन्दर आ जाएँगे। भूत नाम प्राणी का भी आता है। हमारे अन्दर जो चेतना है, वह उस विराट पुरुष की चेतना का प्रतिबिम्बित रूप है। वेद के नासदीय सूत्र में मन्त्र आता है—

न सत् आसीत् न असत् आसीत् तदानीम्।

ऋग्वेद १०/१२९/१

न व्यक्त था और न अव्यक्त था। सूरज , चाँद, सितारों का जो कुछ व्यक्त जगत दिख रहा है, कभी यह नहीं था, और जब महाप्रलय होगा, तो यह फिर से लय हो जायेगा।

पहले संक्षेप में बताया जा चुका है कि हम एक छोटी सी दुनिया में रह रहे हैं, एक छोटे से पृथ्वी लोक में, जिसमें हम असंख्य सूर्य, चाँद आदि नक्षत्रों को, उपग्रहों को देखा करते हैं। हम तो अभी तक इस ब्रह्माण्ड का दसवाँ हिस्सा भी नहीं जान पाये हैं। विज्ञान ने जितनी भी खोजें की हैं, उनके अनुसार ब्रह्माण्ड के ओर-छोर का पता वैज्ञानिक आज तक नहीं लगा पाए हैं। ये निहारिकाएँ (आकाशगंगाएँ) कहाँ से पैदा हो रही हैं, इसका उत्तर विज्ञान आज तक नहीं खोज पाया है। जितनी आकाशगंगाएँ हैं, उनमें प्रकाश ही प्रकाश भरा होता है, जिससे हमारे सूर्य जैसे करोड़ों सूर्य पैदा होते हैं और फिर उसी में लय हो जाते हैं। एक ब्लैक होल तारे का नाम आप लोगों ने सुना है। वह ब्लैक होल तारा ऐसा होता है, जिसमें हमारे सूर्य जैसे हजारों सूर्य समाप्त हो

जाएँगे। जैसे मेंढक को जब साँप निगलता है, तो मेंढक दिखता नहीं है। वैसे ही ब्लैकहोल तारा हमारे सूर्यों जैसे हजारों सूर्यों को निगलने का सामर्थ्य रखता है। इसी का बड़ा रूप है वह महाशून्य, जिसको शास्त्रीय भाषा में प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप कहते हैं। उसी को कहते हैं निराकार।

उस सूक्ष्मतम स्वरूप से असंख्य निहारिकायें पैदा होती हैं, और उन निहारिकाओं से असंख्य सूरज, चाँद, सितारे पैदा होते हैं, प्रजा की उत्पत्ति होती है, जीवन चलता है। लेकिन इस संसार में रहने वाले प्राणी यह नहीं जान पाते कि प्रकृति क्या है और उसके परे भी कुछ है? यह जितना कुछ देख रहे हैं, सूरज, चाँद, सितारे, आकाश, महत्तत्त्व, अहंकार, प्रकृति, यह सारा स्वरूप परिवर्तनशील है। निराकार महामाया से यह सारा साकार

जगत बनता है और उसी में विलीन होता रहता है।

हर पदार्थ नश्वर है। हम देखते हैं कि आज हम बच्चे हैं, कुछ समय बाद युवक दिखने लगते हैं, फिर वृद्ध दिखने लगते हैं, और फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। कोई महल बनाते हैं, तो कुछ समय तक अच्छा लगता है, फिर धीरे-धीरे महल जीर्ण होने लगता है। हर पदार्थ कम्पनशील है और कम्पनशीलता ही परिवर्तनशीलता का रूप है। जिस समय अणुओं का कम्पन बन्द हो जायेगा, उस समय महाप्रलय हो जायेगा, और यदि कम्पन है, तो पदार्थ का रूप बदलता रहता है।

इसलिए सारी सृष्टि परिवर्तनशील है और इस परिवर्तनशीलता को रोका नहीं जा सकता। इसको कहते हैं "क्षर"। हर क्षण जिसमें परिवर्तन होता है, उसको कहते हैं क्षर पुरुष। आप पृथ्वी लोक से लेकर समस्त

निहारिकाओं में घूम आइये। आकाश की भी सीमा जहाँ समाप्त हो जाती है। अहंकार, महत्तत्त्व, और उसके भी आगे जहाँ कारण-प्रकृति का स्वरूप समाप्त हो जाता है, हर जगह परिवर्तनशीलता दिखाई पड़ेगी। यह कहलाएगा "क्षर पुरुष"। इसको संचालित करने वाला कौन है?

इसे आप एक दृष्टान्त से समझिये। जैसे आप यहाँ पर गहरी निद्रा में सो गये और स्वप्न देखने लगे। स्वप्न में देख रहे हैं कि मैं दिल्ली पहुँच गया हूँ और किसी दुकान वाले से सामान खरीद रहा हूँ। कदाचित् किसी बात पर कहा-सुनी हो जाती है और वह आपको चाँटा मार देता है। चाँटा खाकर आपकी नींद टूट जाती है और आप सोचते हैं कि मैं तो यहीं हूँ, दिल्ली कहाँ से पहुँच गया था? नींद टूटी तो सपना टूटा और सपना टूटा तो सपने में जो देख रहे थे, वह सब समाप्त हो गया।

उसी तरह से अक्षर ब्रह्म का मन सृष्टि का संकल्प करता है और उसका संकल्प ही सृष्टि का कारण बनता है। हमारे सौरमण्डल जैसे असंख्य सौरमण्डल उसके संकल्प मात्र से पैदा होते हैं। समुद्र में देखिए असंख्य पानी के बुलबुले एक साथ पैदा होते हैं और उसी में डूबते रहते हैं। उसी तरह से निराकार प्रकृति से हमारे सौरमण्डल जैसे असंख्य सौरमण्डल, असंख्य सूर्य और निहारिकाएँ पल-पल पैदा हो रहे हैं और उसी में डूब रहे हैं। यह ब्रह्म के संकल्प मात्र से पैदा होते हैं। हमने तो परमात्मा को एक बहुत ही छोटी सी चीज बना रखा है। उसका वह स्वाप्निक मन जो इस स्वप्नमयी संसार की कल्पना करता है, उसको कहते हैं आदिनारायण। मनुस्मृति में इसके बारे में बहुत अच्छी व्याख्या है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

मनुस्मृति १/१०

आपः (नार) कहते हैं मोह को, जो प्रकृति का सूक्ष्मतम रूप है। उसमें जिसका अयन अर्थात् निवास होता है, उसको कहते हैं नारायण।

जो परमात्मा का अखण्ड स्वरूप है, वह माया से सर्वथा परे है। उसको "तमसः परि" कहा गया है।

पुरुष सूक्त का एक मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णः तमसः परस्तात्।

यजुर्वेद ३१/१८

संसार किससे पैदा हुआ है? तमस् से। तमस् कहते



हैं अज्ञानता के अन्धकार को। इसी को मोह, अज्ञान, काल, शून्य, और निराकार भी कहते हैं।

इसी निराकार महामाया से यह जो कुछ व्यक्त जगत् प्रकट हुआ है, इसमें दिखने वाले सारे प्राणी महाप्रलय में उसी में लय को प्राप्त हो जाते हैं, और अक्षर का सांकल्पिक मन इसको क्रियान्वित करता है। वह सांकल्पिक मन इस मोहसागर में क्रियाशील होने के कारण नारायण कहलाता है। उसी नारायण के अन्दर संकल्प होता है "एकोऽहं बहुस्याम्"। इसको भी एक दृष्टान्त से समझिये, क्योंकि दृष्टान्तों से किसी भी दार्शनिक गुत्थी को समझना बहुत सरल होता है।

एक कपड़ा बेचने वाला व्यापारी है, जो दिनभर कपड़े बेचता है। रात को जब वह सोता है, तो सपने में भी वह कपड़े बेचना शुरू कर देता है। कपड़े बेचते-बेचते

अपना ही कपड़ा फाड़ डालता है क्योंकि वह दिनभर कपड़ा बेचता रहा है। इसका कारण क्या है? उसके अन्दर कपड़े फाड़ने का संस्कार है। निद्रा में भी उसको पता नहीं होता। अक्षर उसको कहते हैं, जिसका कभी विनाश न हो, जो कभी लय न होता हो, जो जन्म-मरण से परे है। इसके लिए उपनिषद में कथन आया है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामौषधयः।

सम्भवन्ति यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥

मुण्डक उपनिषद १/७

अर्थात् जिस तरह मकड़ी से जाला बनता है, जैसे पुरुष के शरीर से रोंए पैदा होते हैं और पृथ्वी से औषधियाँ पैदा होती हैं, उसी तरह से उस अविनाशी अक्षर से यह सम्पूर्ण जगत् पैदा होता है।

वह अक्षर अपने संकल्प से निराकार प्रकृति के परमाणुओं में कम्पन पैदा करता है। परमाणु का सम्बन्ध एटम से न समझिए। परमाणु का अर्थ ही होता है, जिसका और अधिक विभाजन न हो सके। आज तो एटम से भी सूक्ष्म कणों की खोज हो चुकी है। लगभग चालीस और सूक्ष्म कणों का पता लग चुका है।

आज तक तो विज्ञान को आकाश की संरचना तक मालूम नहीं हो पाई है। पाँच परमाणुओं के मिलने से आकाश का एक अणु बनता है। आकाश की संरचना क्या है, यह किसी को नहीं मालूम है। हाँ, वायु तत्व तक का ज्ञान है। विज्ञान को यहाँ तक ज्ञान है कि प्रारम्भ में गैसों थीं और उन गैसों से अग्नि तत्व प्रकट हुआ, जिससे निहारिकाओं की रचना हो गई। यहाँ तक तो विज्ञान को जानकारी है।

आकाश से भी सूक्ष्म अहंकार है। अहंकार से सूक्ष्म महत्तत्त्व है। महत्तत्त्व से सूक्ष्म प्रकृति है और उसका सूक्ष्मतम रूप मोहसागर है जिसमें अक्षर का मन संकल्प करके नारायण के रूप में प्रकट होता है। उसी के संकल्प से असंख्य ब्रह्माण्ड बनते हैं, यह किसी को नहीं मालूम है। इसकी गुत्थी श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी से खुलती है। दर्शन-शास्त्रों में है। वेदों में है, लेकिन इतने रहस्यमयी ढंग से है कि बिना उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा के उसको नहीं जाना जा सकता।

इस संसार में इतने प्राणियों को देखने पर एक प्रश्न उठता है कि परमात्मा तो सर्वज्ञ है, फिर उसके बनाये हुये प्राणियों में इतनी अज्ञानता क्यों है?

आज से साल भर पहले, आज की ही तारीख को आपने कौन सा भोजन किया था आपको नहीं मालूम है।

कल क्या होने वाला है, आपको कुछ भी जानकारी नहीं है। आप यहाँ बैठे हुये हैं, आपके घर में क्या घटना घटित हो रही है, आपको कुछ भी नहीं मालूम। ये स्वप्न का ब्रह्माण्ड है, नींद का ब्रह्माण्ड है, और परमात्मा सर्वज्ञ है।

यो सर्वज्ञः सर्वविधस्यैव महिमा भुवि।

दिव्य ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः॥

मुण्डक उपनिषद् मु. २/खं. २

उपनिषद् का यह वाक्य सारे रहस्यों से पर्दा उठा देता है। परमात्मा कहाँ है? "दिव्य ब्रह्मपुरे" शब्द है। दिव्य का अर्थ क्या है? त्रिगुणातीत। यह संसार क्या है मायापुरी। निराकार प्रकृति कारण स्वरूप जिसको महामाया कहते हैं, उसी से यह जगत् प्रकट हुआ है,

और संसार किसको यहाँ खोज रहा है? उस सच्चिदानन्द परमात्मा को इस मायावी जगत् में खोज रहा है।

क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत— तीन पुरुषों के बारे में थोड़े में ही सारे तर्कों से सबके हृदय पटल पर यह बात अंकित करनी है कि परमात्मा वास्तव में है कहाँ? इस जगत् में है या इस जगत से परे है। आपने एक बहुत ही सुन्दर उक्ति सुनी होगी—

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।

शतपथ ब्राह्मण १४/३/१/३०

ऐसा क्यों? इसमें प्रार्थना की गई है कि हे परब्रह्म! मुझे इस असत्य से सत्य की तरफ ले चल, अज्ञानता के अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल, मृत्यु के कष्ट से अमृतत्व की तरफ ले चल। यह जगत् क्या है? असत्,

अज्ञान का स्वरूप, मृत्यु का स्वरूप। जो भी प्राणी इस जगत् में जन्म लेता है, मृत्यु पहले से ही उसका आलिंगन करने के लिये तैयार बैठी रहती है। जन्म लेते ही मौत पीछा करना शुरू कर देती है। चाहे जड़ पदार्थ हो या चेतन प्राणी हो, सबके साथ विनाश जुड़ा हुआ है।

नारायण किसे कहते हैं? अभी मैंने आपको दृष्टान्त दिया कि जैसे एक कपड़े का व्यापारी रात्रि में सोते समय भी कपड़ा फाड़ डालता है, उसी तरह से उस अविनाशी अनन्त सत्ता वाले अक्षर ब्रह्म का मन स्वप्न में प्रकृति के अन्दर नारायण के रूप में लीला करता है, और उसी के संकल्प से, उसी की चेतना द्वारा असंख्य प्राणियों का प्रादुर्भाव होता है।

आपकी नींद टूटी थी और जैसे आपका ही स्वरूप दिल्ली में किसी दुकानदार से बातें कर रहा था। नींद टूटते

ही आपका सपना टूट गया और आपका स्वप्न का शरीर भी समाप्त हो जाता है। जो जाग्रत में होता है, वही स्वरूप बचता है। इसी प्रकार आदिनारायण का वह स्वरूप जो अक्षर के मन का सांकल्पिक स्वरूप होता है, तभी तक रहता है जब तक नींद का आवरण, स्वप्न का आवरण होता है। नींद के हटते ही वह स्वप्न का स्वरूप समाप्त हो जाता है और केवल एक अविनाशी अक्षर ब्रह्म बना रहता है। इस प्रकार जो कूटस्थ है, उसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं।

इसके लिए एक छोटा सा दृष्टान्त देना चाहूँगा, क्योंकि रामचरितमानस घर-घर में पढ़ा जाता है, जिसमें तुलसी दास जी ने एक विशेष बात बताई है—



नेति नेति जेहि वेद निरूपा, निजानन्द निरूपाधि अनूपा।

रामचरितमानस

वेदों ने जिस परमात्मा का नेति-नेति करके वर्णन किया है। वैसे चारों वेदों में "नेति" शब्द नहीं है, किन्तु उपनिषदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में, दर्शन ग्रन्थों में है। सांख्य शास्त्र में नेति शब्द आया है। जिसको निजानन्द कहते हैं, आनन्द का सागर कहते हैं, सभी उपाधियाँ जहाँ से लौट आती हैं, जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती, वही परमात्मा है।

तत्त्व अभ्यासात् नेति नेति इति त्यागाद् विवेक सिद्धिः।

सांख्य दर्शन ३/७५

इसी प्रकार अधिकतर उपनिषदों में नेति शब्द आया है, लेकिन चारों वेदों में कहीं भी नेति शब्द नहीं आया है।

हाँ, उपनिषदों के कथनों को देखकर सन्तों ने वेद के साथ नेति शब्द जोड़ दिया है। इसका भाव क्या है? परमात्मा के स्वरूप को यदि सूर्य के साथ भी जोड़ते हैं, तो भी यह वास्तव में नहीं हो सकता, क्योंकि परमात्मा चेतन स्वरूप है और सूर्य का प्रकाश जड़ है। परमात्मा के सौन्दर्य की तुलना यदि चन्द्रमा से करते हैं, तो भी वास्तविकता नहीं है क्योंकि वह त्रिगुणातीत स्वरूप है। संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिससे उस परमात्मा के स्वरूप की व्याख्या की जा सके।

इसलिये वेद, उपनिषद्, दर्शन का कथन है, "न इति न इति" अर्थात् ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। अर्थात् हमारा मन उस परमात्मा के स्वरूप के बारे में व्याख्या नहीं कर पा रहा है, क्योंकि वह शब्दातीत है। आगे तुलसी दास जी क्या कहते हैं—

शंभु विरंचि विष्णु भगवाना, उपजहिं जासु अंश ते नाना।

रामचरितमानस

"नाना" का तात्पर्य है असंख्य या अनेक। जिसके अंशमात्र से शम्भु अर्थात् शंकर जी, विरन्चि अर्थात् ब्रह्मा जी, और विष्णु भगवान उत्पन्न होते हैं, किसके अंश से? अखण्ड ब्रह्म का तो कभी खण्डन हो ही नहीं सकता। जैसे-एक फूल है, इसका अंश कब होगा? जब इसके टुकड़े किये जाये, तो ही अंश प्राप्त होगा। जो ब्रह्म अखण्ड है, अछेद्य है, अभेद है, उसको अंश-अंशी भाव से नहीं जोड़ा जा सकता। उसके स्वाप्टिक मन के संकल्प से नारायण का जो स्वरूप बनता है, उनकी चेतना के प्रतिबिम्बित स्वरूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी प्रकट होते हैं।

अब पूछा जाये कि हिन्दू समाज आज कहाँ भटक रहा है? किसकी भक्ति कर रहा है? क्या वह रामचरितमानस को भी मान रहा है। जितने अवतार होते हैं, वे सारे विष्णु भगवान के ही तो अवतार होते हैं। गीता में एक श्लोक आता है। वह श्लोक बहुत प्रचलित है और टी. वी. सीरियल आदि पर भी बार-बार दिखाया गया।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ गीता ४/७,८

इसका बाह्य अर्थ क्या लगाया जाता है कि भगवान श्री कृष्ण कह रहे हैं कि धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ। कौन प्रकट होता है? महान

पुरुष सृष्टि के कल्याण के लिये हमेशा युग-युग में प्रकट होते हैं। सच्चिदानन्द परब्रह्म कभी माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करते। सच्चिदानन्द परमात्मा कभी जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ते। उस सच्चिदानन्द परब्रह्म का न विवाह होता है और न उनके बाल-बच्चे होते हैं। लेकिन सभी अवतारों में अधिकतर ने विवाह किया है और उनकी सन्तानें भी पैदा हुई हैं।

जो परमात्मा है, वह तो सबका है। वह कभी बूढ़ा नहीं होता, कभी गर्भ में नहीं आता, कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। जितने विष्णु भगवान के अवतार हैं, या जितने दिव्य पुरुष संसार में सूक्ष्म शरीर से भ्रमण करते हैं, वे सृष्टि के कल्याण के लिए अवतरित होते हैं, जिसको कहते हैं "अवतार"। परमात्मा इन सबसे परे है। ये सारे महापुरुष किससे प्रकट होते हैं? उसी

आदिनारायण से। लय भी होते हैं तो उसी आदिनारायण में। और आदिनारायण किसका स्वरूप है? अक्षर का।

अब प्रश्न यह है कि अविनाशी अक्षर कहाँ है? जैसे मैंने कहा कि जाग्रत अवस्था में प्रधानमन्त्री के दो रूप हैं— चाहे वह कार्यालय में हो या घर में। एक में सत्ता का स्वरूप लीला कर रहा है, एक में प्रेम का। जहाँ वह आनन्द का स्वरूप लीला कर रहा है वह है अक्षरातीत। उसमें केवल आनन्द ही आनन्द है। जो सत्य है, वही चेतन है, और वही चेतन स्वरूप ही आनन्द का स्वरूप है, इसलिये सत् चिद् आनन्द के लक्षण जिसमें नहीं है, वह परमात्मा नहीं है।

सत्य किसको कहते हैं? अनादि काल से जो जैसा था, अनन्त काल तक वैसा ही रहे, उसके स्वरूप में कभी विकृति न आये, वह कभी बूढ़ा न हो, कभी मरे

नहीं, उसको कहते हैं सत्य। जो कभी दुख से ग्रसित नहीं हो सकता, वह है परमात्मा, अर्थात् परमात्मा कहलाने की शोभा केवल अक्षरातीत की है, जिनकी सत्ता का स्वरूप अक्षर ब्रह्म असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन करता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या वह परमात्मा इस जगत् में है या नहीं?

भाई रे ब्रह्मग्यानी ब्रह्म दिखलाओ, तुम सकल में सांई देख्या।

ये संसार सकल है सुपना, तो तुम पारब्रह्म क्यों पेख्या।।

किरन्तन ३२/१

इसे एक दृष्टान्त से समझिए। यहाँ जितने भी धर्मप्रेमी सज्जन बैठे हैं, मैं उनसे पूछता हूँ कि आपमें से कितने लोग स्वर्ग जायेंगे? तो कुछ लोग हाथ उठा देंगे। कितने लोग वैकुण्ठ जायेंगे? तो इसमें भी कुछ लोग हाथ

उठा देंगे। बेहद मण्डल में कितने लोग जायेंगे? इसके लिए भी हाथ उठ जायेगा।

किन्तु यदि मैं यह प्रश्न करूँ कि नर्क में कितने लोग जायेंगे? तो कोई भी हाथ नहीं उठायेगा। चाहे कोई माँस खाये, चाहे सारे पाप करे, कुछ भी करे, किन्तु नर्क में जाने के लिये क्यों नहीं तैयार है? जब सारा जगत् ही ब्रह्म का रूप है, तो नर्क में क्यों नहीं जाना चाहते? क्या नर्क में ब्रह्म नहीं है? आखिर जिसने सारी सृष्टि, स्वर्ग इत्यादि बनाया हैं, उसने नर्क भी बनाया होगा। नर्क के कण-कण में भी तो वही होगा, फिर उसमें जाने की इच्छा क्यों नहीं होती?

वैसे तो भारतीय जनमानस को एक भ्रम में डाला जाता है कि देखो! यदि तुम नर्क में जाओगे, तो तुम्हें तलवार से काटा जायेगा, अग्नि में जलाया जायेगा, मगर



तुम्हें निगलेंगे। ये नर्क क्या हैं? जब मनुष्य मर जाता है या कोई भी प्राणी मरता है, तो उसका सूक्ष्म शरीर होता है। सूक्ष्म शरीर को न अग्नि से जलाया जा सकता है और न तलवार से काटा जा सकता है। नर्क की अलग से कल्पना ही व्यर्थ है। जितनी योनियाँ हैं, वे सभी नर्क के ही रूप हैं।

सुअर को देखिए, उसे कितना तड़पा-तड़पाकर काटा जाता है। क्या नर्क उससे ज्यादा कष्टकारी होगा? नाली के कीड़े को देखिए, वह गन्दगी में ही जन्म लेता है और उसी में मर जाता है। उसे बाहर निकालने पर भी भागकर उसी में जाता हैं, यही तो नर्क है। माता के गर्भ में हम भी रहते हैं। गन्दगी में हमारा शरीर भी कष्ट पाता है। आखिर यह भी तो कहीं न कहीं कष्टमयी नर्क है। हमारे शरीर में भी क्या है?

बाहर निकसो तो आप नहीं, और मांहे नरक के कुण्ड।

ब्रह्म तो यामे न पाईये, ए क्यों कहिए ब्रह्म घर पिण्ड॥

किरन्तन ३४/१४

यदि हमको दस्त लग जाते हैं, तो हमको ऐसा लगता है कि हमारे शरीर में कितनी गन्दगी भरी है ? ब्रह्माण्ड में कहीं भी चले जाइये , क्या कहीं ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप है? जिसके लिये वेदों ने कहा—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।

अथर्ववेद ७/८९/४

हे परमात्मा! तू तेज स्वरूप है। अभी लगभग चार बजे हैं और चार घण्टे के बाद घना अन्धकार छा जायेगा। आठ बजे रात को हम चारों ओर टटोलते फिरें कि सूर्य कहाँ है? सूर्य कहाँ से मिलेगा। रात के अन्धेरे में क्या सूर्य मिलेगा? और जब सूर्य का उजाला फैल जाता

है, तो क्या वहाँ रात मिल सकती है? जहाँ रात्रि है वहाँ दिन नहीं, और जहाँ दिन है वहाँ रात्रि नहीं। जहाँ ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप है, वहाँ रात्रि का अन्धकार नहीं हो सकता, वहाँ माया का अन्धकार नहीं हो सकता।

काल आवत कबूं ब्रह्म भवन में, तुम क्यों न विचारो सोई।

अखण्ड सांई जो यामें होता, तो भंग ब्रह्माण्ड को न होई॥

किरंतन ३२/६

कल एक माता ने प्रश्न किया था कि यदि परमात्मा हमारे अन्दर बैठा है, तो जब हम बुरा काम करते हैं तो वह मना क्यों नहीं करता? और यदि वह मना करता है, तो हम मानते क्यों नहीं?

अब प्रश्न यह है कि क्या आपके अन्दर परमात्मा बैठा है? तो इसको आप एक दृष्टान्त से समझिए। एक

कसाई है। वह बकरे को काटना चाहता है। जब कसाई बकरे को काटता है, तो बकरा चिल्लाता है— मुझे मत काटो। कसाई के अन्दर भी परमात्मा बैठा है, बकरे के अन्दर भी परमात्मा बैठा है, और उस तलवार के अन्दर भी परमात्मा बैठा है जिससे कसाई बकरे को काटना चाहता है। बकरे वाला परमात्मा बकरे की करुण आवाज सुनकर भी उसे बचा नहीं पा रहा है। कसाई वाला परमात्मा कहता है कि रे कसाई! तू क्यों काट रहा है? वह कसाई कहता है कि मैं तो अवश्य काटूँगा।

एक विचारधारा चलती है कि जब मनुष्य बुरे कर्म करना चाहता है, तो हृदय में भय और लज्जा का अनुभव होता है। यह शिक्षा परमात्मा की तरफ से है। इसलिये सबके हृदय में बैठा हुआ परमात्मा उसको बचाता है, लेकिन मनुष्य मानता नहीं। परमात्मा कहे और मनुष्य

उसकी आज्ञा का उल्लंघन करे? जिसकी इच्छा मात्र से करोड़ों लोक-लोकान्तर एक पल में पैदा हो जाते हैं। एक अदना सा इंसान क्या उस परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन कर सकता है?

ज्ञान का सागर आपके अन्दर बैठा है, तो फिर आपको प्रवचन सुनने की क्या आवश्यकता है?

कोई कहे ये सबे ब्रह्म, तब तो अज्ञान कछुए नहीं।

तो षट्शास्त्र हुए काहे को, मोहे ऐसी आवत मन माहीं॥

किरंतन २९/६

आपके अन्दर सर्वशक्तिमान, सारे ज्ञान का सागर परमात्मा बैठा है और आप शास्त्र पढ़ रहे हैं, वेद पढ़ रहे हैं, प्रवचन सुन रहे हैं, इसकी क्या आवश्यकता है? जहाँ सर्वज्ञ परमात्मा है, वहाँ अज्ञानता का प्रश्न हो ही नहीं

सकता। सृष्टि में यही तो हो रहा है , कण-कण में अज्ञानता, कण-कण में अन्धकार।

आपका जीव क्या है? बहुत छोटा सा स्वरूप है। उपनिषदों में कहा गया है कि बाल की नोक के दस हजार टुकड़े कर दिये जायें, तो उससे भी छोटा जीव है। वह छोटा जीव एक हाथी के अन्दर रहता है, एक व्हेल मछली के अन्दर रहता है, तो उनका पूरा विशालकाय शरीर चेतन रहता है।

जैसे आपका छः फीट का शरीर है। यदि आप अपने पैर में काँटा चुभेगा, तो पीड़ा होगी। हाथ में चुभेगा, तो भी पीड़ा होगी। इसका कारण क्या है? जिस तरह से एक कमरे में एक ट्यूबलाइट जलती है, तो सारे कमरे में प्रकाश होता है, उसी तरह से एक सूक्ष्म जीव के रहने मात्र से पूरा शरीर चेतन रहता है। जब वह जीव निकल

जाता है, तो उस शरीर को आग में जलाइये, तलवार से काटिए, वह थोड़ी भी पीड़ा का अनुभव नहीं कर सकता। मुरदे शरीर को जलाइये, काटिये, क्या अन्तर पड़ता है?

चेतन जीव के निकल जाने पर यह सारा शरीर जड़ हो जाता है। यदि वही चेतन परमात्मा सृष्टि के कण-कण में व्यापक है, तो सारी सृष्टि चेतन होनी चाहिए। किन्तु देखने में आता है कि पृथ्वी बात नहीं करती, आकाश कुछ बात नहीं करता, वायु नहीं बोलती, जल नहीं बोलता, अग्नि नहीं बोलती, फिर इसका मतलब क्या है? यह जड़ जगत् है। चेतन ब्रह्म तो कुछ और है। वेद ने कहा है—

**आदित्यवर्णः तमसः परस्तात्। यजुर्वेद ३१/१८**

परब्रह्म तमस् से परे है। पूरे प्रकृति मण्डल के तीन

भाग किये जाते हैं— पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक। द्युलोक का तात्पर्य है, जहाँ से आकाशगँगायें प्रकट होती हैं। जिस द्युलोक से सूर्य आदि को प्रकाश मिलता है। उसके परे "स्वः" आनन्दमयी लोक है, जो प्रकृति से परे है। ब्रह्म का स्वरूप द्युलोक से परे है, माया में नहीं है। जब सूर्य उगा होता है, तो पृथ्वी पर कहीं भी अन्धकार नहीं होता, और जब रात्रि का अन्धकार होता है, तो सूर्य नहीं होता। दुनिया का ज्ञान अनूठा है। दुनिया क्या कहती है? सूर्य में अन्धेरा है और अन्धेरी रात के कण—कण में सूर्य व्यापक है। यह कैसे सम्भव है? रात्रि में दिन का अस्तित्व कैसे हो सकता है? सामवेद का एक मन्त्र है। उसका छोटा सा अंश आपको बताता हूँ—

शुक्रं ते अन्यत् यजतं ते अन्यद्विपुरुषे अह्नी द्यौरिवासि।

सामवेद आग्नेय काण्ड प्र. १/खं. ८/मं. ३



हे परमात्मा! आपका स्वरूप और माया का स्वरूप वैसे ही है, जैसे दिन और रात्रि। परमात्मा का स्वरूप दिन के समान प्रकाशमान है और इस मायावी जगत् का स्वरूप रात्रि के समान अन्धकारमयी है। एक बहुत सरल सा दृष्टान्त है, जिससे आपको सारी बात समझ में आ जायेगी।

मेरे हाथ में एक घड़ी है। यदि घड़ी बनाने वाले को मैं खोजना चाहूँगा, तो क्या करूँगा? यदि मैं इस घड़ी को पीटूँ, आग में गलाऊँ, तो क्या घड़ी को बनाने वाला निकल आयेगा? निमित्त कारण कभी भी उपादान कारण में व्यापक नहीं हो सकता। एक सिद्धान्त मानिये – निमित्त कारण ब्रह्म है। उसने उपादान कारण प्रकृति से इस जगत् को बनाया है। प्रकृति की लीला को देखिए! पृथ्वी समय घूम रही है। सभी ग्रह-नक्षत्र समय पर अपने

सारे कार्य कर रहे हैं। सारी सृष्टि का नियामक एक है। इसको देखकर यह पता चलता है कि परमात्मा की सत्ता है, लेकिन उसका स्वरूप तो कहीं और है।

एक बहुत अच्छा तर्क दिया जाता है— जैसे तिल में तेल है, दूध में मक्खन है, और फूल में सुगन्धि है, लकड़ी में आग है, उसी तरह परमात्मा भी सृष्टि के कण-कण में है, लेकिन उसका अनुभव ज्ञान-चक्षुओं से होता है। बड़े-बड़े विद्वान इसी तर्क को देते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी यह बात लिखी हुई है।

अब आप इसको समझिये कि किस तरह से इस समस्या का समाधान हो। तिल में तेल तो होता है, लेकिन दिखाई नहीं देता। जब उसको कोल्हू में पेरा जाता है, तो उसमें से तेल निकल आता है। दूध में मक्खन छिपा रहता है और आँखों से देखने पर दिखाई

नहीं देता, लेकिन जब दूध बिलोया जाता है तो मक्खन निकल पड़ता है। लकड़ी में अग्नि छिपी होती है, लेकिन दिखाई नहीं देती। जब लकड़ी को जलाया जाता है, तो अग्नि प्रकट हो जाती है। वैसे ही सृष्टि के कण-कण में परमात्मा छिपा होता है, किन्तु दिखाई नहीं देता। जब ध्यान-समाधि लगाते हैं, तो परमात्मा नजर आ जाता है।

मैंने अभी घड़ी का एक दृष्टान्त दिया। घड़ी को बनाने वाला कारीगर बहुत होशियार है। यह घड़ी की बनावट देखकर अन्दाजा लगाया जा सकता है, लेकिन वह घड़ी के अन्दर बैठा नहीं है।

इसी प्रकार, कुम्भकार घड़े को बनाता है। घड़े को देखकर हम कह सकते हैं कि कुम्भकार बहुत अच्छा है। निमित्त कारण कुम्भकार है तथा मिट्टी उपादान कारण है।

जिससे कोई वस्तु बनाई जाये, उसको कहते हैं उपादान कारण। जो प्रत्यक्ष बनाने वाला है, वह कहलायेगा निमित्त कारण। उपादान कारण के अन्दर निमित्त कारण कभी भी व्यापक नहीं हो सकता। कुम्भकार मिट्टी से जब घड़ा बनाता है, तो घड़े के कण-कण में कुम्भकार नहीं रहेगा। घड़े के कण-कण में उसकी संरचना, उसकी कला, उसकी बौद्धिक कुशलता दृष्टिगोचर होगी।

उसी प्रकार दूध में मक्खन की बात आती है। दूध पैदा करने वाली कौन है? गाय। गाय के थन से दूध निकलता है। निमित्त कारण हुई गाय। दूध के कण-कण में आप गाय को खोजिये, तो गाय कहीं नहीं मिलेगी। दूध से मक्खन निकलता है और दूध में मक्खन छिपा होता है। उसी तरह से इस कार्य रूप जगत् में प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप व्यापक है। आकाश सभी दृश्यमान

पदार्थों में व्यापक है , आकाश में अहंकार व्यापक है , अहंकार में महत्तत्त्व व्यापक है। महत्तत्त्व में कारण प्रकृति व्यापक है। यह सब कुछ तो हो सकता है, लेकिन जड़ प्रकृति में चेतन परब्रह्म स्वरूप से व्यापक हो , यह कभी संभव नहीं।

आप एक गिलास पानी लीजिये और उसमें एक चम्मच चीनी घोल दीजिये। फिर उसे नीचे से चखिये, ऊपर से चखिये, बीच से चखिये, हर जगह उसकी मिठास बराबर होगी। उसी तरह से चेतन परमात्मा जड़ प्रकृति के कण-कण में व्यापक हो जाये, तो सारी प्रकृति चेतन दिखेगी, जैसे एक ट्यूबलाइट के जलने से सारा कक्ष प्रकाशित हो जाता है।

और जिस तरह से बाल की नोंक के दस हजारवें भाग से भी छोटा जीव हाथी के अन्दर रहता है तो हाथी

चेतन रहता है, तथा जब वह निकल जाता है तो हाथी भी जड़ हो जाता है। यदि वही परमात्मा सृष्टि के कण – कण में व्यापक होता तो आकाश चेतन होता, पृथ्वी चेतन होती, वायु चेतन होती, दीवार चेतन होती, लेकिन ऐसा देखने में कुछ नहीं आता है। परमात्मा चेतन है, लेकिन कहीं और, परमधाम में है, इस प्रकृति के अन्धकार में नहीं। अब इन तीनों दृष्टान्तों को समझिये –

लकड़ी में अग्नि की बात कही जाती है। वेदान्त दर्शन में एक सूत्र आता है – "दुर्शवाच्च" (३/२/२९), जिसका आशय यह है कि जिस तरह से चन्दन में सुगन्धि है, नीम में कड़वापन है, लेकिन उसमें जो छिपी हुई अग्नि है, उसका चन्दन की सुगन्धि से और नीम की कड़वाहट से कोई लेना-देना नहीं होता, वह निर्विकार भाव से रहती है। वेदान्त दर्शन के उस सूत्र का भाव यह

है कि परमात्मा भी प्राणी के जन्म-मरण से रहित है। वह हर प्राणी में है, हर पदार्थ में है, लेकिन यह सृष्टि उत्पन्न हो या इस सृष्टि का लय हो, इससे उस परमात्मा का कोई लेना-देना नहीं है।

पहली बात, लकड़ी में जो अग्नि है, वह सूक्ष्म रूप से है। लकड़ी में जल तत्व भी है और जल तत्व का कारण है अग्नि। यानी लकड़ी में जो अग्नि तत्व छिपा हुआ है, वह कारण रूप में है। वह कारण रूप प्रकट हो जाता है, लेकिन जिस पेड़ की लकड़ी को हम जलाते हैं, उस पेड़ को लगाने वाला जो निमित्त कारण किसान है, क्या वह लकड़ी में बैठा है? यह दृष्टान्त परमात्मा पर लागू नहीं हो सकता, क्योंकि अग्नि भी जड़ है, लकड़ी भी जड़ है, और अग्नि से ही जल तत्व बना है। जल तत्व से पृथ्वी तत्व बना और लकड़ी के अन्दर पाँचों तत्व हैं—

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश। अग्नि तत्व जो उसके अन्दर कारण रूप से विद्यमान है, वह प्रकट हो गया। यह कौन सी बड़ी बात है। चेतन ब्रह्म को उसके निमित्त कारण रूप से हटाकर उपादान कारण में जोड़ना किसी भी तरह से न्यायसंगत नहीं है।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि दूध के अन्दर गाय नहीं बैठी है, लकड़ी के अन्दर लकड़ी को पैदा करने वाला किसान नहीं बैठा है। इसी प्रकार श्वेताश्वतोरपनिषद् १/१५ में "तिलेषु तैलं" का उदाहरण बहुत अच्छी तरह से दिया गया है। सरसों या तिल जड़ पदार्थ है। जिस किसान ने तिल का पौधा लगाया होगा, वह निमित्त कारण हुआ। क्या निमित्त कारण किसान तिल के अन्दर बैठा है? चाहे आप उसको जला डालिये, चाहे उसे कितने ही कोल्हुओं में पेरिए, क्या वह किसान निकल



पड़ेगा? कभी नहीं। इसलिये तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

तद् सृष्ट्वा तदैव अनुप्राविशत्।      ब्रह्मा व. अनु. ६

उसने सृष्टि को रचकर सत्ता रूप से उसमें प्रवेश किया।

कोई कहे ये कछुए नहीं, तो ए भी क्यों बनी आवे।

जो यामें ब्रह्म सत्ता न होती, तो ब्रह्मांड न अधखिन रहने पावे।।

किरन्तन २९/५

श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी सृष्टि के सारे अनसुलझे रहस्यों से पर्दा उठाती है कि परमात्मा कहाँ है, ब्रह्म के संकल्प से सृष्टि कैसे पैदा होती है, यह धीरे-धीरे जब हम समझेंगे, तो सारे रहस्य उजागर होते जायेंगे। वेद में एक मन्त्र आता है—

चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम्।

अथर्ववेद १०/८/२१

ब्रह्म के चतुष्पाद् अर्थात् चार पैर हैं और उसका चौथा पाद बार-बार सृष्टि के रूप में प्रकट होता है।

त्रिभिः पद्भिर्धामिरोहत पादस्येहाभवत् पुनः।

अथर्ववेद १९/६/२

अव्याकृत किसको कहते हैं? जो व्यक्त न हो सके। मन से जिसका मनन नहीं हो सकता, चित्त से जिसका चिन्तन नहीं हो सकता, बुद्धि से जिसकी विवेचना नहीं हो सकती, वह परमात्मा कहलाता है। मन, चित्त, बुद्धि से उस परमात्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह परमात्मा चेतन है और चेतन को चेतन ही प्राप्त करेगा। उस अव्याकृत को ही अक्षर का मन कहते हैं। वही मन

मोहसागर में प्रकृति के सूक्ष्मतम स्वरूप में संकल्पित रूप से नारायण का रूप लेता है और उसी नारायण के संकल्प से असंख्य लोक-लोकान्तरों तथा सृष्टि के प्राणियों की उत्पत्ति होती है, एवम् सृष्टि का कार्य चलता है।

अब एक प्रश्न आता है कि जब परमात्मा स्वयं ज्ञानमय है, तो उसने प्राणियों को अज्ञानता में क्यों डाला? जन्मते ही प्राणी अज्ञानता के बन्धन में होता है। एक बात बताइये कि गौतम बुद्ध को ज्ञान किससे मिला? महावीर स्वामी को ज्ञान किससे मिला? मन्त्र दृष्टा ऋषियों को ज्ञान किसने दिया? आखिर समाधिस्थ प्रज्ञा को प्राप्त करके समाधि अवस्था में इन मनीषियों ने अपने स्वरूप को जाना।

यदि हर प्राणी के अन्दर वही पहले से बैठा हुआ है,

तो मनुष्य माँस क्यों खाता है? नशा क्यों करता है? एक कसाई को देखिए। जैसे मातायें घर में सब्जी काटती हैं, वैसे ही वह न जाने कितने ही मुर्गों को प्रतिदिन काटता है। उसको दया नहीं आती। क्या यह सम्भव है कि उसके अन्दर बैठा हुआ परमात्मा मना करे और वह माने नहीं। इसका मतलब यह कि परमात्मा की सत्ता को वह सीधे चुनौती दे रहा है? जिसकी इच्छा मात्र से पृथ्वी जैसे असंख्य लोक एक पल में लय हो जाते हैं और इस एक पृथ्वी में रहने वाला एक इंसान उसकी आज्ञा का बार-बार उल्लंघन करे कि मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा और जानवरों की हत्या करें, यह किसी भी कीमत पर सम्भव नहीं है।

उसके अन्दर से जो प्रेरणा आती है, वह उसके अच्छे संस्कारों के कारण आती है। जब मनुष्य नशे का

सेवन करता है तो वह भूल जाता है कि मैं कितना बुरा काम कर रहा हूँ, क्योंकि उस समय उसके अच्छे संस्कार दब जाते हैं और बुरे संस्कार उभर आते हैं, इसलिए गलत विचारों के आने के कारण ही वह गलत कार्य करता है। ऐसा नहीं है कि परमात्मा कह रहा हो और वह माने नहीं।

यदि परमात्मा वहीं बैठा है, तो उसके अन्दर ज्ञान का प्रकाश क्यों नहीं कर देता? उसके तो स्मरण मात्र से हमारा हृदय पवित्र हो जाता है। जैसे आप ध्यान में बैठिये और ध्यान से उठने के पश्चात् आप मन में कोई बुरा विचार लाइये। पन्द्रह मिनट तक आपके हृदय में कोई भी बुरा विचार नहीं आ पायेगा, क्योंकि आपका हृदय परमात्मा के प्रेम से कुछ क्षणों के लिये प्रकाशित हो चुका है। थोड़ी देर बाद प्रयास करेंगे, तो आपके मन में कोई

बुरा विचार आयेगा। कारण क्या है? यदि निर्विकार परमात्मा अखण्ड रूप से आपके अन्दर बैठा है, तो आपको काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहंकार क्यों सताता है? आप तृष्णाओं के पीछे क्यों भागते हैं? वही अन्दर बैठा है, तो किसको देखना चाहते हैं? जब सृष्टि के कण-कण में वही बैठा है, तो किसके दर्शन की आकांक्षा है? आप किससे ज्ञान लेना चाहते हैं? सर्वज्ञ परमात्मा को आप अपने अन्दर बिठाये हुए हैं और ज्ञान के लिये मारे-मारे फिर रहे हैं। कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं। निर्विकार परमात्मा आपके अन्दर बैठा है और आप विकार से ग्रसित हैं, आखिर क्यों?

एक तर्क है जिस पर चिन्तन किया जा सकता है कि परमात्मा तो है लेकिन वह दिव्य-चक्षुओं से देखा जायेगा। हृदय में होते हुए भी वह परे है। परे का तात्पर्य

प्रकृति से परे है।

**आदित्यवर्णः तमसः परस्तात्। यजुर्वेद ३१/१८**

वह तमस् से परे है। हमें प्रकृति से परे जाना पड़ेगा। प्रकृति के अन्दर जो कुछ है, वह आपके शरीर में भी है। आपका शरीर प्रकृति के कार्यजगत का एक छोटा सा रूप है।

प्रकृति में पाँच तत्व हैं, तो पाँच तत्व का आपका शरीर है, अहंकार है, महत्तत्व है। यह सब आपके शरीर के अन्दर है, और जो यह जीव है, उसी नारायण की चेतना का प्रतिबिम्बित रूप है। जो कुछ क्षर जगत् में है, वह आपके शरीर में भी है। इससे परे अक्षर है, उससे परे जो अक्षरातीत है, वह आपके शरीर में नहीं है। रात्रि के घने अन्धकार में सूर्य का एक कण नहीं आ सकता ,

किरण नहीं आ सकती। यदि सूर्य की एक किरण आ जायेगी, तो प्रकाश छा जायेगा। उसी तरह से हमारे हृदय में अक्षरातीत परमात्मा नहीं है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि हृदय में परमात्मा नहीं है, तो ध्यान कहाँ करें? सभी ग्रन्थों का सार यही है और श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी में भी कहा है कि हृदय में उसका साक्षात्कार होता है। कारण क्या है? इसको एक दृष्टान्त से समझिए। आकाश में सूर्य चमक रहा है। यदि आप उसके सामने दर्पण रख देंगे, तो उसमें भी सूर्य चमकने लगता है। आकाश वाले सूर्य में और दर्पण वाले सूर्य में क्या अन्तर है? क्या दर्पण वाला सूर्य काला दिखता है? नहीं। जैसा आकाश वाला सूरज है, वैसा ही आपके दर्पण में भी दिखाई पड़ेगा। उसी तरह से आत्मा के अन्तःकरण में उसकी शोभा दृष्टिगोचर होती



है। परमात्मा तो माया से सर्वथा ही परे है।

काल आवत कबूँ ब्रह्म भवन में, तुम क्यों न विचारो सोई।

अखंड सांई जो यामें होता, तो भंग ब्रह्मांड को न होई॥

किरंतन ३२/६

जहाँ परमात्मा है, क्या वहाँ मृत्यु पहुँच सकती है?  
नहीं। वेद कहते हैं—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति।

यजुर्वेद ३१/१८

उसको जानकर, उसका साक्षात्कार करके जीव मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है। जब पहले से ही हमारे अन्दर परमात्मा रम रहा है, तो मृत्यु क्यों आती है? वह परमात्मा उसे मृत्यु से क्यों नहीं बचा लेता? स्पष्ट है कि परमात्मा का स्वरूप इस मायावी जगत् से सर्वथा परे है और संसार इसी जगत् के अन्दर उसको खोज रहा है।

जब तक हम इस जगत् से परे नहीं जायेंगे, तब तक उस परमात्मा के स्वरूप को नहीं जाना जा सकता। इसीलिये तो कहा है—

कई दरवाजे खोजे कबीरे, बैकुंठ सुन्य सब देख्या।

आखिर जाए के प्रेम पुकारया, तब जाए पाया अलेखा॥

किरंतन ३२/१०

यह वैकुण्ठ क्या है? पौराणिक मान्यता के अनुसार वैकुण्ठ एक सुखमयी लोक है जहाँ सभी प्राणी आनन्द में विहार करते हैं, और यह सबको मालूम है कि इस वैकुण्ठ से परे निराकार ही वो मण्डल है जिसे शून्य कहा है। जब तक हम इस दृश्य-अदृश्य जगत् से परे नहीं जायेंगे, जहाँ चेतना ही चेतना है, जहाँ प्रेम ही प्रेम है, तब तक ब्रह्म के स्वरूप के बारे में कोई नहीं जान

सकता। उपनिषद् का एक कथन है, जो कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद् में भी है, कि जो ब्रह्म का धाम है वहाँ सूर्य भी नहीं चमकता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं।

कठोपनिषद् पंचमीवल्ली श्लोक १५

वहाँ पर न सूर्य है, न चन्द्रमा है, और न तारों का प्रकाश है।

न इमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः।

कठोपनिषद् वल्ली ५ श्लोक १५

यह विद्युत भी नहीं चमकती है, तो अग्नि कहाँ?

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्।      कठोपनिषद् ५/१५

उस ब्रह्म के प्रकाश से ही वहाँ सब कुछ प्रकाशित

होता है। उसकी ही चमक से सब कुछ चमकता है। तात्पर्य क्या है? हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, यह सूरज, चाँद, सितारों की दुनिया है। यहाँ सूर्य का प्रकाश है, विद्युत का प्रकाश है, अग्नि का प्रकाश है, लेकिन परमात्मा का प्रकाश नहीं है। किन्तु वहाँ तो प्रेम का स्वरूप है, हर वस्तु चेतन है, हर वस्तु त्रिगुणातीत है। हम सत्, रज, और तम की त्रिगुणात्मिका माया के जगत् में रहकर यहाँ के कण-कण में परमात्मा को खोजने का प्रयास करते हैं, और यह सबसे बड़ी भूल है।

जैसे अभी मैंने एक दृष्टान्त दिया था कि घड़ी को बनाने वाला घड़ी के अन्दर नहीं बैठा है, वैसे ही निमित्त कारण ब्रह्म, उपादान कारण माया या उससे बने हुये व्यक्त जगत् में कभी भी व्यापक नहीं हो सकता। आपके मन में संशय अवश्य हो सकता है कि जब परमात्मा नहीं

है, तो इसको चला कौन रहा है? यह बात सच है कि अणु-अणु में, परमाणु-परमाणु में उसकी सत्ता समाई हुई है। यदि उसकी सत्ता न हो, तो ब्रह्माण्ड एक पल के लिए भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। उसकी सत्ता से ही सब कुछ चलता है। उपनिषदों ने इसको सरल रूप में प्रस्तुत किया है—

**भयादस्य अग्निः तपति भयात्तपति सूर्यः।**

**भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युः धावति पंचमः॥**

**कठोपनिषद षष्ठी वल्ली श्लोक ३**

उसी परमात्मा के भय अर्थात् सत्ता से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, चन्द्रमा आदि नक्षत्र अपने-अपने कार्य में लगे हैं। उसी के भय से मृत्यु भी क्रियाशील है। अर्थात् कोई भी ऐसा अणु या परमाणु नहीं है, जो यह कह सके

कि मैं परमात्मा की सत्ता से परे हूँ। परमात्मा की सत्ता अलग है और स्वरूप अलग है।

सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर आता है। वह कीचड़ पर भी पड़ेगा, लेकिन सूर्य के अन्दर कीचड़ नहीं रहेगा। सूर्य के अन्दर यदि कीचड़ को डाला जाये, तो वह भी दहकते हुए सूर्य में परिणित हो जायेगा। अग्नि में लोहे को डालेंगे, तो लोहा भी अग्नि के साधर्म्य को प्राप्त कर लेगा। यही तो आधुनिक वेदान्तियों की भ्रान्ति है। आदि शंकराचार्य के अनुयायी कहते हैं, "अहम् ब्रह्मास्मि, तत् त्वमसि", अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ और तुम भी वही हो।

अहम् ब्रह्मास्मि का तात्पर्य क्या है? मैं उस ब्रह्म से युक्त हूँ, यह नहीं कि मैं अनादि ब्रह्म हूँ। यदि आप साक्षात् ब्रह्म हैं, तो आपको क्रोध क्यों आता है? परमात्मा ने तो असंख्य नक्षत्र बनाये हैं और आप यदि

अपने आपको ब्रह्म मानते हैं, तब भी आप मिट्टी का एक कण भी नहीं बना सकते। आप ब्रह्म हैं, तो आप मरते क्यों हैं? आप दूसरों को जिन्दा क्यों नहीं करते?

जो सृष्टि का कर्ता है, पालनकर्ता है, विनाशकर्ता है, वह परमात्मा है। मनुष्य ब्रह्म को जानकर ब्रह्म के तदोगत होता है। ब्रह्म की तरह निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर सकता है, लेकिन अनादि ब्रह्म के सभी गुण उसमें नहीं आ सकते।

यदि ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप इस माया के संसार में होता, तो सारा संसार ही ब्रह्म का स्वरूप होता। इसलिए वेदान्तियों ने जो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कह दिया कि सारा संसार ही ब्रह्म का रूप है, यह भ्रान्ति है। यदि सारा जगत् ही ब्रह्म का रूप है, तो इस सृष्टि में इतना पाप क्यों हो रहा है? चोरी, डकैती, न जाने कितने पापमयी कर्म

हो रहे हैं। आखिर परमात्मा कहाँ बैठा है? कितने प्राणी करुण क्रन्दन कर रहे हैं। क्या परमात्मा का हृदय पसीजता नहीं है? कितने प्राणियों की हत्या होती है? उसको देखने वालों का दिल दहल जाता है। परमात्मा को तो दया का सागर कहा जाता है, प्रेम का सागर कहा जाता है। उसकी दया और करुणा कहाँ चली जाती है? क्या वह बहरा हो गया है?

यह जीव की कर्म भूमि है। यह द्वैत का ब्रह्माण्ड है, प्रकृति का मण्डल है, और इस प्रकृति के मण्डल में जीव जन्म लेता है, मरता है, वासनाओं से ग्रसित होकर ८४ लाख योनियों में भटकता है। शुभ-अशुभ कर्मों के कारण वह कभी सुखी होता है, तो कभी दुःखी होता है। इन सारे द्वन्द्वों से परे है परमात्मा। पृथ्वी पर दिन होता है, पृथ्वी पर रात्रि होती है। इसको प्रकाश देने वाला सूर्य है,



जो आकाश में है। पृथ्वी के धूल और कीचड़ से उसको कोई भी लेना-देना नहीं है, इसको कहते हैं "कूटस्थो अक्षर उच्यते"। इसलिए परमात्मा का स्वरूप निर्विकार है, चेतन है, अनन्त प्रेम और आनन्द की राशि है। इसलिए वेद के मन्त्र में सरल तरीके से कहा गया है—

यत्र ज्योतिरजस्र यस्मिन्लोके स्वर्हितम्।

तस्मिन्मां धेहि पावनामृतेलोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋग्वेद ९/११३/७

हे परब्रह्म! जहाँ अनन्त आनन्द है, मुझे वहाँ ले चल।

यत्र आनन्दाः च मोदा च मुदः प्रमुद आसते।

कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋग्वेद १०/११३/११

जहाँ आनन्द ही आनन्द है, प्रेम ही प्रेम है। मुझे वहाँ ले चल, जहाँ सम्पूर्ण कामनायें पूर्णता को प्राप्त होती हैं।

इस मायावी जगत् में यह घट नहीं सकता। सन्तों ने अपने-अपने पदों में दूसरे रूप में इसी को परिभाषित किया है कि रे हँस! तू वहाँ ही चल, जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं। जहाँ बिना सूर्य के प्रकाश हो, बिना बादल के वर्षा हो, बिना पञ्चभौतिक तन के आनन्द की सृष्टि हो, मुझे वहाँ चलना है।

जब हम त्रिगुणात्मक जगत् से परे चलेंगे, तभी हमें ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। यदि सृष्टि के कण – कण में परमात्मा होता, तो सारी सृष्टि में कहीं भी ध्यान लगाते, तुरन्त परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता। कोई भी अज्ञानी नहीं होता, कोई दुःखी नहीं होता, कोई

विकारग्रस्त नहीं होता , और बार-बार अलग-अलग समाधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि सृष्टि के कण-कण में परमात्मा होता, तो आप यदि दीवार का भी ध्यान करते, तो उसी परमात्मा के चैतन्य स्वरूप के दर्शन हो जाते।

परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान है। करोड़ों, अरबों, खरबों सूर्यों का प्रकाश भी कभी उसकी समानता नहीं कर सकता। ब्रह्म में अनन्त प्रकाश है , जबकि एक सूर्य के प्रकाश को तो हम देख नहीं पाते। यहाँ हम एक तर्क दे सकते हैं कि जब कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर से पुरुष प्रकट होते हैं, तो उनका प्रकाशमयी स्वरूप दिखता है किन्तु इस पञ्चभूतात्मक शरीर में तो प्रकाश दिखता नहीं? यह बात सच है कि कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर का जो प्रकाशमयी शरीर (स्वरूप)

होता है, वह भी त्रिगुणात्मक होता है और उसको इन नैनों से देखा जा सकता है। परमात्मा त्रिगुणातीत है और उस त्रिगुणातीत परमात्मा को देखने के लिए त्रिगुणातीत चैतन्य दृष्टि की आवश्यकता होती है।

वह परमात्मा कहाँ है? अथर्ववेद में केन सूक्त है और उसी से बना है केनोपनिषद। उसमें ब्रह्मपुरी का वर्णन किया गया है। उसका आशय संक्षेप में मैं बताता हूँ— ब्रह्म के यशोरूप तेज से वह घिरी हुई है और उस ब्रह्मपुरी में वह ब्रह्म विराजमान है। उपनिषदों ने इसी को दूसरे शब्दों में कहा—

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलं।

तत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योति यत् आत्मविदो विदुः॥

मुण्डक उपनिषद मु.२/खं.२(९-४१)

हिरण्य कोश में निर्विकार ब्रह्म विराजमान है , वह ज्योतियों का भी ज्योति है , जिसको आत्मज्ञानी देखते हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या हमारे अन्दर ब्रह्मपुरी है ? ब्रह्म ब्रह्मपुरी में विद्यमान है। ब्रह्मपुरी को तो सूक्ष्म माना गया है। कुछ ऐसे प्राणी हैं, जिनमें आठ चक्र और नौ द्वार नहीं हैं। इसी सूक्त में आता है—

**अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या।**

**अथर्ववेद का. १० सू. २ मन्त्र ३१**

अयोध्या का अर्थ भी यही है। जिसको युद्ध में जीता न जा सके वही अयोध्या है, वही अपराजिता है। माया में उत्पन्न होने वाला जीव उस दिव्य ब्रह्मपुरी में प्रवेश नहीं कर पाता। इसीलिये वह माया के कण-कण में परमात्मा को देखने का प्रयास करता है। इस सूक्त में यह बताया

गया है कि जो उस ब्रह्मपुरी को जान लेता है, वह मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यदि आपके अन्दर ब्रह्म बैठा है, तो बच्चा-बच्चा भी कह देगा कि हमारे अन्दर ब्रह्म बैठा है।

प्रह्लाद की कहानी तो कही ही जाती है। प्रह्लाद से हिरण्यकश्यप ने पूछा- "तुम्हारा परमात्मा कहाँ है?" प्रह्लाद ने कहा- "हे पिताश्री! वह मेरे अन्दर है, तुम्हारे अन्दर है, इस खम्भे के अन्दर है।" बात तो सही है, परन्तु वह सत्ता से सबमें है। लेकिन हिरण्यकश्यप के अन्दर बैठा हुआ परमात्मा हिरण्यकश्यप को सद्बुद्धि नहीं दे सकता, तो वह कैसा परमात्मा है? जिसका स्मरण मात्र ज्ञान के चक्षु खोल देता है, दिव्य ज्ञान राशि में डुबो देता है, निर्विकारिता के सागर में डुबो देता है, वह परमात्मा हमारे हृदय मन्दिर में बैठा हो और फिर भी हम

बुरे कर्म करें, पापों में लिप्त रहें, यह कैसे सम्भव है?

परमात्मा की बात कही जाती है कि वह "हिरण्यकोश" में है। हिरण्य का अर्थ होता है – ज्योतिर्मय कोश। बताइये, चींटी के अन्दर क्या आठ चक्र और नौ द्वार हैं? चींटी से भी सूक्ष्म जीव है अमीबा आदि। क्या उनके अन्दर आठ चक्र, नौ द्वार हैं? सर्प के अन्दर क्या आठ चक्र और नौ द्वार हैं? क्या परमात्मा केवल मनुष्य से बन्धा हुआ है?

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्म विदो विदुः।

अथर्ववेद १०/८/४३

शब्दों का अर्थ कोई भी कर लेगा कि जो हृदय – कमल है, उसको पुण्डरीक कहते हैं। इस शरीर में नौ

द्वार हैं और इसमें परमात्मा विद्यमान हैं। लेकिन तारतम वाणी की दृष्टि से देखते हैं, तो कुछ नये ही रहस्य खुलते हैं।

निमित्त कारण यानी मूल कारण। जैसे चूल्हा जल रहा हो, तवा भी गरम हो, आटा भी गुँथा हो, लेकिन रोटी बेलने वाला न हो, तो रोटी नहीं पकेगी। कोई चेतन प्राणी जाकर रोटियों को बेलेगा, तवे पर रखेगा, तभी रोटियाँ बन सकेंगी। कुम्भकार मिट्टी से घड़े बनाता है। यदि बनाने वाला कुम्भकार न हो, मिट्टी पड़ी हो, चाक पड़ा हो, तो भी घड़ा नहीं बन सकता। अतः रोटी बेलने वाला और कुम्भकार हो गये निमित्त कारण।

जिस साधन से कोई वस्तु बनाई जाती है, उसको उपादान कारण कहते हैं। जैसे दूध से मक्खन निकलता है, तो दूध हो गया उपादान कारण और गाय हो गई



निमित्त कारण। यदि गाय न हो, तो दूध पैदा ही न हो। इसी प्रकार, यह सारी व्याख्या आपको बताई गई कि निमित्त कारण कभी भी उपादान कारण के अन्दर कण-कण में व्यापक नहीं हो सकता।

यह व्यापक का सिद्धान्त कहाँ से चला है? जीव अल्पज्ञ है, एकदेशी है, क्योंकि वह अणु मात्र है, बहुत ही सूक्ष्म है। मैंने श्वेताश्वतरोपनिषद् का उदाहरण देकर बताया कि जैसे बाल की नोंक के दस हजार टुकड़े किये जायें, तो उससे भी छोटा जीव होता है। स्वाभाविक है कि वह एकदेशी होगा। माया से आवृत्त है, विकारों से भरा है, इसलिए सर्वज्ञता का गुण इसमें नहीं हो सकता। यहाँ लखनऊ में बैठकर वह यह नहीं जान सकता कि कलकत्ता की अमुक सड़क पर कौन से नम्बर की गाड़ी जा रही है।

लेकिन जिस परमात्मा की सत्ता में अनन्त प्राणी वास करते हैं, सबके कर्मों की देखभाल, उनके शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार उनके सुख-दुःख की व्यवस्था करना, उनको मुक्ति का आनन्द प्रदान करना, उनको ज्ञान देना, सर्वशक्तिमान परमात्मा के अलावा अन्य किसी के लिए सम्भव नहीं है। इसलिये परमात्मा को सर्वज्ञ होना आवश्यक है। वह सर्वव्यापक तो है, लेकिन किस प्रकार से, यह समझना होगा। परमात्मा अल्पज्ञ नहीं है। परमात्मा त्रिगुणातीत है, सर्वज्ञ भी है, लेकिन सर्वव्यापकता में दो तरह की विचारधारा माननी पड़ेगी। एक है सत्ता से सर्वव्यापक होना, और एक है स्वरूप से सर्वव्यापक होना।

जैसे मैंने इसके पहले दृष्टान्त दिया कि एक गिलास पानी में यदि शक्कर घोल देते हैं और कहीं से भी चखते

हैं, तो शक्कर की मिठास ऊपर, नीचे, या बीच में समान रूप से अनुभव में आती है। शर्बत में चीनी की मिठास है, अर्थात् चीनी की लीला सर्वत्र हो रही है। इसी प्रकार, फूल में सुगन्धि सर्वत्र व्यापक है। फूल की पँखुड़ी हो या उसका पराग हो, सबमें सुगन्धि आएगी। आम का पेड़ है, उसकी पत्ती में भी आम की महक आयेगी, उसकी छाल में भी आयेगी, फल में भी आयेगी, फूल में भी आयेगी।

उसी तरह, लीला रूप में परमात्मा निजधाम (त्रिगुणातीत धाम) में व्यापक है और सत्ता रूप से इस मायावी जगत् में व्यापक है। इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिससे परमात्मा की सत्ता का अनुभव न होता हो। ऋषियों ने उसे अपने दिव्य-चक्षुओं से देखा है। चाहे सूर्य उगता है, चन्द्रमा उगता है, अनन्त ब्रह्माण्ड बनते हैं।

बड़े-बड़े नास्तिक से भी पूछिए कि ये आँखें कैसे बन गईं? इस आँख में कितनी बड़ी कारीगरी है। आप सोते रहते हैं और शरीर में विचित्र क्रियाएँ होती रहती हैं। आपके हृदय की धड़कन चलती रहती है। आपका खून प्रतिदिन साफ होता रहता है। कौन सा कारीगर है, अलौकिक फूलों को रंगने वाला? कौन सा कारीगर है, अनेक प्रकार की वनस्पतियों को, वृक्षों को, और पशुओं को जन्म देने वाला? इसी प्रकार कोई अनन्त सत्ता है, जो सारी सृष्टि का संचालन कर रही है। जिस तरह से मिट्टी के घड़े से कुम्भकार की कारीगरी दिखती है, उसी तरह से सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से परमात्मा की कारीगरी दिखती है, अर्थात् उसकी सत्ता कण-कण में व्यापक है।

किन्तु यदि परमात्मा का निज स्वरूप यहाँ पर होता, तो सारा ब्रह्माण्ड उसके जैसा होता। अग्नि में लोहा

डाल दीजिए, पहले तो लोहा दहकेगा, फिर अग्नि के समान दिखाई देने लगेगा। यह जगत् यदि ब्रह्म के रूप में है, तो सारा जगत् ब्रह्मरूप हो जाएगा, फिर कोई दुःखी और लूला-लंगड़ा नहीं रहेगा। सृष्टि में क्या हो रहा है? कोई भूखा मर रहा है, कोई लूला है, कोई लंगड़ा है, कोई अन्धा है, कोई कोढ़ी है। श्मशान में जाइये, अस्पताल में जाइये दुःख ही दुःख, संसार में कहीं भी जाइए चारों तरफ दुःख ही दुःख है, सुख कहीं नहीं है। कपिल जी ने सांख्य शास्त्र में कहा है—

**कुत्रापि कोऽपि सुखी नास्ति।      सांख्य दर्शन ६/७**

कोई भी, कहीं भी, इस सृष्टि में सुखी नहीं है।

सुखी कौन है? जिसने उस आनन्द के सागर परमात्मा को अपने हृदय में आत्मसात् कर लिया,

एकमात्र वही सुखी है, अन्यथा सृष्टि में हर प्राणी दुःखी है।

परमात्मा को सर्वव्यापक क्यों कहा गया? सर्वज्ञता को सिद्ध करने के लिए। जो सर्वत्र होगा वही सर्वव्यापक होगा, और जो सर्वव्यापक होगा वही सर्वज्ञ होगा। जैसे मैं यहाँ बैठा हूँ, तो यहाँ बैठे-बैठे कोलकाता की किसी सड़क से गुजरती हुई गाड़ी का नम्बर नहीं बता सकता। लेकिन जो वहाँ होगा, वह देखकर बता सकता है। इसलिए मनीषियों का यह चिन्तन है कि परमात्मा को सर्वव्यापक कहना पड़ेगा, तभी वह सर्वज्ञ सिद्ध हो सकेगा।

सर्वज्ञता सिद्ध करने के लिए उसको अखण्ड सिद्ध करना पड़ेगा। अखण्ड सिद्ध करने के लिए यह तर्क बनाना पड़ा कि जो वस्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म हो, वही

अखण्ड रह सकती है, जैसे पाँच तत्व हैं। सबसे पहले पृथ्वी तत्व का विनाश होगा, उसके बाद जल तत्व का, फिर अग्नि तत्व का, फिर वायु तत्व का, फिर आकाश तत्व का। उसके पश्चात् अहंकार का लय होगा, फिर महत्तत्त्व का लय होगा, और फिर कारण प्रकृति का लय होगा। मनीषियों का चिन्तन यह कहता है कि यदि हम ब्रह्म को प्रकृति से भी सूक्ष्म मानें, तो महाप्रलय के बाद भी वह परमात्मा अखण्ड बना रहेगा, क्योंकि वह प्रकृति से भी सूक्ष्म है।

बस यह विचारधारा कार्य करती है और यहाँ से निराकारवाद का जन्म होता है। सर्वज्ञ सिद्ध करने के लिए सर्वव्यापक कहना अनिवार्य है, और अखण्ड सिद्ध करने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म कहना अनिवार्य है, क्योंकि सूक्ष्म वस्तु ही विनाश को प्राप्त नहीं हो पाती, स्थूल का

विनाश स्वाभाविक होता है।

अब आगे प्रकाश डाला जायेगा कि वह साकार है या निराकार या दोनों से भिन्न है? कहाँ है? कैसा है? यह एक गुत्थी है, क्योंकि संसार के बड़े से बड़े मनीषी इसी में भटकते हैं कि हम परमात्मा को कहाँ मानें? कैसा मानें? साकार में मानें या निराकार में। यदि साकार मानते हैं तो भ्रान्तियाँ पैदा होती हैं, और यदि निराकार मानते हैं तो कुछ जिज्ञासायें पैदा होती हैं। साकार क्यों माना जाये या निराकार क्यों माना जाये, यह समझाएगी श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी।





## चतुर्थ अध्याय

### परब्रह्म का स्वरूप कैसा है?

अकामो धीरो अमृतः स्वयं भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।

तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

अथर्ववेद १०/८/४४

वह परब्रह्म सम्पूर्ण कामनाओं से पूर्ण है , धीर है, अमृत स्वरूप है, आनन्द रस से परिपूर्ण है, और प्रत्येक दृष्टि से अनन्त सामर्थ्य वाला है। उसी धीर अर्थात् सर्वदा शुद्ध स्वरूप वाले, अजर, और नित्य तरुण रहने वाले परब्रह्म को जानकर विद्वान पुरुष मृत्यु से नहीं डरते हैं।

अब प्रश्न यह है कि परमात्मा कहाँ है ? कैसा है? यही दो प्रश्न हैं, जो सृष्टि के अनादि काल से चले आ रहे

हैं, तथा मनीषियों व ऋषि-मुनियों का विषय रहे हैं।

धर्म और तत्त्व पर मनन करने वालों ने इसके विषय पर काफी मनन किया है। परमात्मा कैसा है, इस विषय पर चार प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं। पहली विचारधारा कहती है कि परमात्मा बिल्कुल साकार है। दूसरी विचारधारा कहती है कि परमात्मा बिल्कुल निराकार है, साकार है ही नहीं, साकार तो अज्ञानता है। तीसरी विचारधारा कहती है कि परमात्मा है तो निराकार, लेकिन भक्तों के कल्याण के लिए आवश्यकता पड़ने पर साकार में परिवर्तित हो जाया करता है। चौथी विचारधारा कहती है कि न तो वह साकार है, न निराकार है, दोनों से भिन्न है। अब इसी की समीक्षा के इर्द-गिर्द आज का सारा विषय रहेगा कि परमात्मा का स्वरूप वास्तव में कैसा है? एक उपनिषद का कथन है—

यो देवो अग्रौ यो अप्सु य भूवनमविवेश।

य औषधीषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

इसका अर्थ यह है कि जो आनन्द स्वरूप परमात्मा अग्नि में है, जल में है, औषधियों में है, वनस्पतियों में है, उस सर्वव्यापक परमात्मा को प्रणाम है। अब प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा अग्नि में है ? जल में है ? औषधियों और वनस्पतियों में है ? परमात्मा की सत्ता, उसकी कृपा, इन सारी वस्तुओं में है। यह कोई इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन परमात्मा का स्वरूप जो वेद ने कहा है कि "तमसः परस्तात्", उसे तमस् से परे ही मानना पड़ेगा, प्रकृति के अन्दर नहीं।

पृष्ठात् पृथिव्या अहम् अन्तरिक्षम् आरूहम् अन्तरिक्षात् दिवम् आरूहम्।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वः ज्योतिर्गाम् अहम्॥

## अथर्ववेद १/१४/३

मैं पृथ्वी से अन्तरिक्ष को जाऊँ , अन्तरिक्ष से द्युलोक को जाऊँ, और द्युलोक से सुखमयी मार्ग द्वारा आनन्दमयी धाम को प्राप्त हो जाऊँ। इसी मन्त्र से ब्रह्म का स्वरूप, ब्रह्म का धाम, और उसको पाने का मार्ग निश्चित होता है। इसी मन्त्र की व्याख्या में तीनों रहस्य स्पष्ट होते हैं।

क्या ब्रह्म साकार है? साकार किसको कहते हैं? साकार का तात्पर्य है, आकार सहित अर्थात् जिसके अवयव हों। निराकार किसको कहते हैं? जिसमें अवयव न हों। हाथ, पैर, गोलाकार, त्रिभुज, किसी भी तरह की आकृति न बनती हो, उसे निराकार कहते हैं। जो भी पञ्चभूतात्मक पदार्थ होता है, प्रायः वह साकार रूप धारण करता है, यानी अग्नि, जल, और पृथ्वी तत्त्व से

बना प्रत्येक पदार्थ साकार कहलाता है।

वायु निराकार है। वायु की कोई आकृति नहीं है। आकाश की कोई आकृति नहीं है , लेकिन रूप है। आकृति और रूप में अन्तर होता है। हवा क्या है ? परमाणुओं का एक ऐसा समूह है, जिसकी कोई आकृति नहीं है, लेकिन दिव्य-दृष्टि से वायु तत्व को देखा जाता है। दिव्य-दृष्टि से आकाश तत्व को भी देखा जाता है। पृथ्वी तत्व का रंग होता है पीला, जल तत्व का रंग होता है श्वेत, अग्नि तत्व का रंग होता है लाल, वायु तत्व का रंग होता है हरा, और आकाश तत्व का रंग होता है काला, लेकिन यह योगियों द्वारा जाना जाने वाला विषय है।

सामान्य बुद्धि वाला प्राणी यही कहेगा कि आकाश का कोई भी रूप नहीं है। सामान्य दृष्टि से सोचने पर

कोई भी प्राणी यही कहेगा कि अणु का कोई रूप नहीं, परमाणु का कोई रूप नहीं, क्योंकि वह आँखों से दिखाई नहीं देते। विद्युत तारों में बह रही है, क्या उसको आँखों से देखा जा सकता है? लेकिन हम तार को छूते हैं तो हमें करंट लगता है और हम मानते हैं इसका कोई रूप तो है। जिसका अस्तित्व है, उसका रूप अवश्य है, भले ही उसकी अनुभूति करने का सामर्थ्य हमारे अन्दर हो या न हो। जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके शरीर से जीव बाहर निकलता है, लेकिन वह आँखों से दिखाई नहीं देता। तब तो हम यही मानेंगे कि जीव का रूप होता ही नहीं। जीव का रूप अलग है, मन का रूप अलग है, चित्त का रूप अलग है, बुद्धि का रूप अलग है, अहंकार का रूप अलग है। समाधि अवस्था में इन सारे पदार्थों का साक्षात्कार होता है।

जो समाधि अवस्था को प्राप्त होते हैं, वे देखते हैं कि तारों की ज्योति जैसा मन का रूप है। चन्द्रमा की ज्योति जैसा चित्त का रूप है। अलग-अलग रंग की ज्योतियों का अलग-अलग रूप होता है, जिसमें अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) का दर्शन होता है। जब सोलह सूर्यों के प्रकाश के बराबर का प्रकाश दसवें द्वार में दिखाई देने लगे, तब यह मानना चाहिए कि हमने जीव के स्वरूप को देखा है। सामान्य योगी समझ लेगा कि हमने परमात्मा का दर्शन कर लिया है, जो बहुत बड़ी भ्रान्ति है। परमात्मा का दर्शन तो परम गुहा में गये बिना कभी भी नहीं होगा। वेदान्त दर्शन में लिखा है—

**गुहां प्रविष्टावात्मन्नौ हि तद्दर्शनात्।**

**वेदान्त दर्शन १/२/११**

अर्थात् परमगुहा में ब्रह्म का दर्शन होता है।

साकार मानने वालों की मान्यता क्या है? या तो वे परमात्मा को आदिनारायण के रूप में मानेंगे या सदाशिव के रूप में मानेंगे। कोई विष्णु भगवान के रूप में मानेगा, कोई शिव के रूप में मानेगा, कोई राम को मानेगा, तो कोई श्री कृष्ण को मानेगा। अलग-अलग इष्ट हैं, अलग-अलग पूजा पद्धति है।

उनकी मान्यता यह है कि परमात्मा सगुण है। सगुण का आशय साकार नहीं, बल्कि यह है कि उसमें गुण विद्यमान हैं। दीपक में प्रकाश का गुण है। पृथ्वी में गन्ध का गुण है। चेतन में जड़ के गुण नहीं हैं और जड़ में चेतन के गुण नहीं। दीवार मुझसे बोल नहीं सकती, क्योंकि वह जड़ है। मैं चेतन हूँ, इसलिए मैं बोल सकता हूँ, लेकिन मैं जड़ नहीं हो सकता जब तक मेरे अन्दर



जीव है। चेतन में जड़ का गुण नहीं होता और जड़ में चेतन का गुण नहीं होता। इसलिए संसार का प्रत्येक पदार्थ सगुण है और प्रत्येक पदार्थ निर्गुण है। साकार को सगुण कहना और निराकार को निर्गुण कहना बहुत बड़ी भूल है।

रूप को निराकार कहना और निराकार को रूप कहना भी उचित नहीं है। जैसे ट्यूबलाइट जल रही है, चारों तरफ प्रकाश है। क्या इसको रूप नहीं कह सकते? प्रकाश रूपवान होता है, लेकिन साथ ही निराकार होता है। प्रकाश का पुञ्ज जैसी वस्तु में जायेगा, वैसी ही आकृति वहाँ दिखाई देने लगेगी। जैसे पानी को गिलास में डालेंगे, तो पानी गिलास जैसी आकृति धारण कर लेता है। वैसे ही प्रकाश गोलाकार वस्तु में डाला जाये, तो वैसी ही आकृति धारण कर लेगा। प्रकाश की कोई विशेष

सीमा नहीं है।

ॐ को भी जब हम दर्शाते हैं, तो उसे चारों ओर प्रकाश से घिरा हुआ दर्शाते हैं। ॐ को अन्धेरे में प्रदर्शित नहीं कर सकते। हर वस्तु प्रकाशमयी है। जीव का प्रकाश अलग है, परमाणुओं का प्रकाश अलग है, अणुओं का अलग प्रकाश है।

अणुओं के मिलने से वायु तत्व बनता है। वायु तत्व में अनेक गैसों मिली रहती हैं। डॉक्टर लोगों के पास जाइये, तो वहाँ आक्सीजन द्रव्य आपको मिल जायेगा, कार्बन-डाई-आक्साईड का द्रव्य आपको मिल जायेगा। अनेक गैसों को द्रवित रूप में दिखाया जा सकता है। वायु तत्व किससे बनता है? आकाश से। आकाश तत्व किससे बनता है? अहंकार से। अहंकार किससे बनता है? महत्तत्व से। महत्तत्व किससे प्रकट होता है? कारण

प्रकृति से। परमाणुओं का यह मिलन स्थूलता लाता जाता है। रूप प्रकट होते जाते हैं। निराकार माया से साकार जगत् प्रकट होता है। साकार जगत् लय को प्राप्त करके निराकार माया में विलीन हो जाता है। निराकार से साकार जगत् की उत्पत्ति होती है और साकार जगत् का निराकार में विलय होता है। दोनों एक-दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं।

इसका अभिप्राय है कि परमात्मा न तो साकार है, न निराकार। किस प्रकार से? हमारा यह तन पञ्चभूतात्मक है। इसको भूख-प्यास लग सकती है। हो सकता है कि योगबल से हम भूख को भी जीत लें। बीस साल, पच्चीस साल, सौ साल तक हमें भोजन करने की आवश्यकता न पड़े, क्योंकि योगदर्शन का सूत्र है—

**कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः।**

**योग दर्शन ३/३६**

कण्ठ कूप में संयम अर्थात् धारणा, ध्यान, व समाधि करने से भूख-प्यास से निवृत्ति हो जाती है। एक पुस्तक है, योगी की आत्मकथा (Autobiography of a Yogi)। उसमें एक योगिनी का वर्णन है, जिसने लगभग ३६ (छत्तीस) साल तक न भोजन किया और न ही जल ग्रहण किया। यह एक आश्चर्यजनक बात लगती है, जबकि योग द्वारा यह सम्भव है। योग द्वारा कितनी ही सिद्धियाँ पाई जा सकती हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि ब्रह्म-साक्षात्कार कर लिया। शरीर जन्मा है, तो वह मृत्यु और बुढ़ापे को भी प्राप्त होगा। इस संसार में परमाणुओं के मेल से जिस वस्तु का निर्माण होता है, एक न एक दिन उसका विनाश अवश्य होता है। निराकार प्रकृति से साकार जगत् बनता है, इसलिए इस जगत् का भी नाश अवश्य होगा। सूर्य चमक रहा है, कुछ समय

बाद यह सूर्य भी नहीं रहेगा, न यह चन्द्रमा रहेगा, न यह पृथ्वी रहेगी, न यह निहारिका रहेगी, न ही कोई नक्षत्र रहेगा।

**शून्य थें जैसे जल बतासा, सो शून्य मांझ समायी।**

जिस तरह से जल के अन्दर असंख्य पानी के बुलबुले उठते हैं और थोड़ी देर बाद उसी में डूब जाया करते हैं, वैसे ही निराकार माया से पानी के बुलबुलों के समान असंख्य लोक उत्पन्न होते हैं और उसी में डूब जाते हैं। संसार में जो भी महापुरुष उत्पन्न होते हैं, उन्हें परमात्मा की संज्ञा नहीं दी जा सकती। महापुरुष कहा जा सकता है, अवतार कहा जा सकता है, लेकिन परमात्मा तो महापुरुष और अवतार दोनों से परे है। वह साकार और निराकार दोनों से परे है। निराकार त्रिगुणात्मक होता है। साकार भी त्रिगुणात्मक होता है।

किन्तु परमात्मा साकार तथा निराकार दोनों से भिन्न है। जहाँ सत्, रज, तम है, वहाँ तक तो प्रकृति अर्थात् माया है।

रामचरितमानस में तुलसी दास जी ने बहुत सरल शब्दों में कहा है—

**गो गोचर जहं लगि जाई, सो सब माया जानहुं भाई।**

**रामचरित मानस**

मन एवं इन्द्रियों की पहुँच जहाँ तक होती है, वहाँ तक माया है। उपनिषदों ने क्या कहा है—

**न तत्र चक्षुः गच्छति न वाक् गच्छति नो मनो न विद्वो न विजानीमो।**

**केनोपनिषद् १/४**

परमात्मा जहाँ है, वहाँ नेत्रों की दृष्टि नहीं जाती, वाणी नहीं जाती, मन नहीं जाता। मन से हम मनन कर

सकते हैं, लेकिन माया का, परमात्मा का नहीं। चित्त से चिन्तन कर सकते हैं, प्रकृति का। बुद्धि से विवेचना कर सकते हैं प्रकृति की, परमात्मा की नहीं, क्योंकि वह परमात्मा अलौकिक स्वरूप वाला है। हमने सूरज की ज्योति देखी है, चन्द्रमा की चाँदनी देखी है, तारों की ज्योति देखी है, विद्युत की चमक देखी है, परमात्मा को तो देखा नहीं।

फिर परमात्मा को हम किस रूप में माने? यहाँ मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, और सर्वव्यापक और सर्वज्ञ सिद्ध करने के प्रयास में अपनी बुद्धि के सहारे यह मान लिया जाता है कि परमात्मा रूप से रहित है। परमात्मा रूप से रहित हो, यह कभी सम्भव नहीं है। परमात्मा का रूप तो है, लेकिन वह पञ्चभूतात्मक नहीं है, त्रिगुणात्मक नहीं है। इस ब्रह्माण्ड में जो भी रूप

दिखाई पड़ते हैं, उनसे केवल दृष्टान्त दिया जाता है।  
जैसे कहा जाता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

यजुर्वेद ३१/१८

आदित्य का अर्थ होता है— अखण्ड स्वरूप, सूर्य।  
सूर्य के समान जो प्रकाशवान हो, जिसका स्वरूप  
अखण्ड हो, जिसका स्वरूप कभी नष्ट न हो, ऐसे स्वरूप  
वाला ही परमात्मा है।

कहा जा रहा है कि इस सूर्य में तो बड़े-बड़े गड्ढे हो  
गये हैं। सूर्य का स्वरूप एक दिन समाप्त हो जायेगा। एक  
दिन यह सूर्य ठण्डा हो जायेगा। हमारी पृथ्वी भी तो कभी  
आग का एक गोला रही होगी, लेकिन आज यह ठण्डी  
है, इसमें बर्फ जमी हुई है। सूर्य का भी ऐसा ही हाल हो



सकता है। लकड़ी जलाई जाती है, तो जलने के बाद क्या बचता है? राख। संसार में जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं, उनमें बिजली की चमक बहुत तेजोमयी होती है। थोड़ी देर के लिए प्रकाश उत्पन्न हो जाता है, लेकिन बाद में बिजली का पता नहीं चलता।

परमात्मा की ज्योति की तुलना विद्युत की चमक से नहीं की जा सकती। सूर्य से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। चन्द्रमा से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। अग्नि के प्रकाश से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। वह अनन्त प्रकाश वाला है। उसको अन्धेरा तो कह ही नहीं सकते। इसलिये वेद ने कहा है—

**शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च।**

**शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंहा॥**

**यजुर्वेद १७/८०**

वह कैसी ज्योति है – शुक्र ज्योति अर्थात् नूरी ज्योति। अरबी में जिसको नूर कहते हैं, संस्कृत में उसको शुक्र कहते हैं। चित्र ज्योति: अर्थात् अद्भुत ज्योति है। सत्य ज्योति: अर्थात् अखण्ड ज्योति है, ऐसी ज्योति जो अनादिकाल से हो। सूर्य, चन्द्रमा, और विद्युत की ज्योति नहीं, यह सब तो नश्वर हैं। कुछ समय के लिए इनका अस्तित्व है और कुछ समय के पश्चात् ये काल के गाल में समा जायेंगे। परमात्मा के स्वरूप को कभी भी इनसे तुलनात्मक दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।

जैसा कि मैंने अभी कहा कि चार प्रकार की विचारधारायें हैं। एक वर्ग परमात्मा को केवल साकार मानता है। यह दर्शाने के लिये कि परमात्मा "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप है, अनन्त है, प्रेम का सागर है, दया का सागर है, ज्ञान का सागर है, सब पर

करुणा की वर्षा करता है, तो कोई न कोई रूप तो होगा, जिस रूप से वह हमसे प्रेम करता है। क्योंकि हर ग्रन्थ का कथन है कि परमात्मा हमारे हृदय मन्दिर में प्राप्त होता है। जब उसका रूप ही नहीं होगा, तो उसे हम कैसे अपने हृदय में बसायेंगे। सूरदास ने यही बात कही है कि जो निराकार है, वह अव्यक्त है, उसका कोई रूप नहीं, फिर लीला रूप में हम उसको अपने दिल में कैसे बसायें?

इस विचारधारा के मनीषियों ने परमात्मा के साकार रूप की कल्पना की। किसी ने कृष्ण भक्ति में अपने को लगाया, किसी ने राम भक्ति में लगाया, किसी ने हनुमान जी की भक्ति की, तो किसी ने परमात्मा की शक्ति को देवी मानकर भक्ति की, किसी ने सदाशिव के रूप में भक्ति की, तो किसी ने अन्य रूप में माना। यहाँ से

साकार की भक्ति शुरू होती है।

रामकृष्ण परमहंस ध्यान कर रहे थे। अचानक वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान और योगी तोतापुरी जी आ गये। उन्होंने कहा— "देखो रामकृष्ण! जैसी मैं तुम्हें दीक्षा देता हूँ, वैसे ही तुम्हें धारणा—ध्यान करना पड़ेगा। दोनों भौंहों के बीच में मन एकाग्र करो।" रामकृष्ण जी जैसे ही ध्यान करते, काली जी दिखाई देने लगतीं, क्योंकि जीवनभर तो उन्होंने काली की पूजा की थी, आराधना की थी। अन्त में तोतापुरी जी ने ऊबकर उनके माथे में शीशा चुभा दिया और कहा— "जहाँ मैंने शीशा धँसाया है, वहीं देखते रहो।"

रामकृष्ण परमहंस के अन्दर अटूट निष्ठा थी, उनका हृदय भी निर्मल था। फिर उसी जगह मन को एकाग्र करने लगे, तो उनका मन एकाग्र हो गया और

निराकार की अनुभूति कर ली। इस पर भी विचारधारा चल पड़ी।

विवेकानन्द जी के साहित्य का अवलोकन कीजिए, यही विचारधारा मिलेगी कि परमात्मा साकार भी है और निराकार भी है। अर्थात् रामकृष्ण जी को तोतापुरी जी द्वारा निराकार की समाधि का अनुभव हुआ, तो वह निराकार कहा जायेगा। इसके साथ ही उन्होंने राधाकृष्ण की भी उपासना की। साकार रूप में अपने इष्ट को माना। काली जी की उन्होंने विशेष रूप से साधना की, तो उन्होंने कहा कि काली जी ही परमात्मा हैं, अर्थात् हम जिस रूप में भी मानें, है तो वह निराकार लेकिन साकार रूप में भी प्रकट हो जाता है। इसी से सम्बन्धित कथन रामचरित मानस में स्पष्ट कहा गया है—

**बिनु पग चलत सुनत बिनु काना।**

पैर नहीं हैं, लेकिन चलता है। कान नहीं हैं, लेकिन सुनता है।

कर बिनु कर्म करै विध नाना।

हाथ नहीं हैं, लेकिन सारे काम करता है।

आनन रहित सकल रस भोगी।

मुख नहीं है, किन्तु सभी रसों का भोक्ता है।

बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।

और बिना वाणी के सबसे बड़ा योगी है।

इसी को दूसरे रूप में श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः चश्रुणोत्यकर्णः।

स वेत्ति विद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता तमाहुर्ग्रयं पुरुषं महान्तं॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१९

वह महानतम् अर्थात् सबसे महान पुरुष है। वह सबको जानता है, लेकिन उसको कोई नहीं जानता। उसके हाथ, पैर, मुख, इन्द्रियाँ नहीं हैं। इसका तात्पर्य यह है कि परमात्मा निराकार है, लेकिन इसका दूसरा भाव भी है। परमात्मा का स्वरूप नहीं है, ऐसा वेद में कहीं नहीं लिखा, उपनिषद् में कहीं नहीं लिखा। उसको तो ज्योतियों का ज्योति कहा गया है। वेद के एक मन्त्र में कहा गया है—

**सः परि अगात् शुक्रम्।**

**यजुर्वेद ४०/८**

परमात्मा शरीर से रहित है। लेकिन कैसे शरीर से? वह त्रिगुणात्मक शरीर वाला नहीं है।

**सः परिअगात् शुक्रम् अब्रणम्।**

**यजुर्वेद ४०/८**

शुक्रम् का तात्पर्य क्या होता है? तेजोमयी स्वरूप

या नूरी स्वरूप। उसे ही गायत्री मन्त्र में भर्गः कहा गया है। चाहे भर्गः कहिए, चाहे शुक्रम् कहिए, चाहे अरबी में नूर कहिए, भाव एक ही है।

नस-नाड़ी से रहित, "अस्नाविरम्" अर्थात् स्नायुओं से रहित है। परमात्मा में स्नायु नहीं है। "शुद्धम्" शुद्ध का अर्थ होता है त्रिगुणातीत और "अपापविद्धम्" अर्थात् पाप से रहित निष्पाप है।

यह त्रिगुणात्मक शरीर कभी भी निर्विकार अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। काम , क्रोध, मद, लोभ, अहंकार इसमें बने ही रहते हैं। जितने भी अवतारों को देखेंगे, तो माया के विकार किसी न किसी अवतार में हो सकते हैं। परशुराम जी को अवतार माना जाता है। आखिर परशुराम जी ने भी तो पृथ्वी को २१ बार क्षत्रिय-विहीन कर दिया था। वैसे तो पुराणों में यह



लिखा है, लेकिन यह सम्भव नहीं है कि क्षत्रियों के खून से कई तालाब भर दिये जायें। यह तो बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बातें हैं। हर अवतार के साथ कुछ न कुछ विकृति है, लेकिन परमात्मा निर्विकार है।

परमात्मा कभी दुःख-द्वन्दों से मोहित नहीं होता, कभी शोक के वशीभूत नहीं होता, कभी बुढ़ापे के अधीन नहीं होता। जो परमात्मा का अखण्ड स्वरूप है, उस स्वरूप को हम कभी भी अज्ञानता के बन्धन में नहीं बाँध सकते। इस मन्त्र में जो कहा गया है कि "अपापविद्धम्" अर्थात् पाप से रहित है। कविः अर्थात् क्रान्तदर्शी। कविः मनीषी, परिभूः, और स्वयंभू। परिभूः का तात्पर्य है सर्वत्र। जिसकी सत्ता सर्वत्र हो। स्वयंभू अर्थात् उसको किसी ने पैदा नहीं किया है। जो परमात्मा है, वह पञ्चभौतिक तन से सर्वथा रहित है। यही इसका भाव है।

इसका मतलब यह नहीं कि परमात्मा का कोई रूप ही नहीं है।

परमात्मा को अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान कहा गया है। गायत्री मन्त्र को जब पढ़ते हैं, तब क्या कहते हैं—

तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य।

यजुर्वेद ३६/३

"भर्गः" का अर्थ है, जो उस परमात्मा का तेजोमयी स्वरूप है। जो "वरेण्यम् भर्गः" है, वही शुक्र है, वही तेजोमयी ज्योति है।

रूचिरसि रोचोऽसि।

अथर्ववेद ७/८९/४

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।

अथर्ववेद १७/१/२१

हे परमात्मा! तू कान्तिमान है, तू मनोहर है, तू दर्शनीय है। उस परमात्मा की कान्ति को कैसा कहा गया

है? विद्युत की तरह। इस संसार में विद्युत की चमक बहुत आकर्षक एवं तेजोमयी होती है, इसलिये यह दृष्टान्त दिया गया है कि परमात्मा का स्वरूप भी वैसा है। लेकिन कैसा? साकार और निराकार से परे।

पहली बात तो यह है कि जो निराकार, साकार में बदलता है, यह माया का स्वरूप है। जो परमात्मा का स्वरूप है, वह अखण्ड है, एकरस है। परमात्मा का स्वरूप परिवर्तनशील नहीं होता, क्योंकि जहाँ परिवर्तन है, वहीं विकृति है। जैसे कोई फल कुछ दिनों के बाद बड़ा हो जाता है, फिर पक जाता है, और पुनः गिर जाता है। जहाँ परिवर्तन है, वहाँ विनाश है। जहाँ एकरसता है, अखण्डता है, वहीं परमात्मा का स्वरूप है। सत्य में कभी भी परिवर्तन नहीं होता। सूर्य पूर्व में उदय होता है, तो कोई यह नहीं कह सकता कि पश्चिम में उदय

होता है। यह शाश्वत सत्य है। उसी तरह से परमात्मा का स्वरूप एक अरब या एक खरब वर्ष पहले जैसा था, अनन्त वर्षों पहले जैसा था, अनन्त वर्षों के बाद भी वैसा ही रहेगा।

इसलिए परमात्मा के स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यह मानना कि निराकार परमात्मा अपने भक्तों के कल्याण के लिये साकार में प्रकट हो जाता है और वही साकार परमात्मा फिर निराकार में बदल जाता है, सत्य का लोप करना है। यह कथन वेद-शास्त्र की मर्यादा के विपरीत है। अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त साकार का रूप यह जगत् प्रकट होता है। हमारा पञ्चभूतात्मक तन प्रकट होता है, फिर मृत्यु के पश्चात् अपने पञ्चभूतों में लय को प्राप्त हो जाता है। परमात्मा अनादि काल से जैसा है, अनन्त काल तक वैसा ही रहेगा।

साकार और निराकार की जहाँ तक बात है, सब इस मायावी जगत की बात है। सब कुछ इस पञ्चभूतात्मक ब्रह्माण्ड की बात है, जिसमें एक-दूसरे में परिवर्तन होता है। सूर्य, चाँद, सितारों का संसार माया से ही उत्पन्न होता है और फिर उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। जब परमात्मा के लिये इस तरह की बातों की जाती हैं, तब हम इतना मान सकते हैं कि भावुकता में यह सारी बातें कही जाती हैं।

**मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्।**

**योग दर्शन ३/३२**

मूर्धा में समाधिस्थ होने से सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार होता है। कदाचित् ऐसी कल्पना की जाये कि कोई भक्त है और वह ध्यान-समाधि में बैठा है। किसी महापुरुष के रूप में किसी सिद्ध पुरुष ने कोई अलौकिक कार्य करके दिखा दिया, तो वह क्या मानेगा कि साक्षात्

परमात्मा ही यहाँ आकर यह अलौकिक कार्य कर गये। एक मान्यता चल पड़ती है कि निराकार परमात्मा ने साकार रूप धारण करके हमारे लिए कार्य कर दिया। जैसे— प्रह्लाद को बचाने के लिए निराकार परमात्मा ने या विष्णु भगवान ने नृसिंह अवतार में प्रकट होकर ही यह कार्य कर दिया है। या किसी का जो भी कार्य सिद्ध होता है, तो वह यही कहता है कि परमात्मा का तो कोई रूप नहीं है, लेकिन उसने रूप धारण करके हमारा यह कार्य पूरा कर दिया है। ये सारी विचारधारायें मन-बुद्धि के धरातल पर परमात्मा के स्वरूप को दर्शाने का प्रयास करती हैं, लेकिन सत्य कुछ और ही होता है।

परमात्मा का स्वरूप क्या है? शुद्ध त्रिगुणातीत है, न वह साकार है और न निराकार। साकार और निराकार तो प्रकृति के स्वरूप हैं। इसके बन्धन में परमात्मा को

कभी भी नहीं बाँधा जा सकता।

प्रश्न यह है कि परमात्मा का वह स्वरूप कैसा है? दर्शन की जहाँ बात आती है, तो एक विचारधारा तो यह कहती है कि परमात्मा को देखा नहीं जा सकता। यदि परमात्मा को देखा नहीं जा सकता, तो दर्शन शब्द सम्भव नहीं था। वेद स्पष्ट कहते हैं—

**वेनः तत् पश्यत् परमं गुहां यद् यत्र विश्वं भवत्येक रूपम्।**

**अथर्ववेद २/१/१**

जीव के शुद्ध स्वरूप को "वेन" कहते हैं और उसी को हँस कहते हैं। उस अवस्था में परमगुहा में उस ब्रह्म का दर्शन होता है। दर्शन किससे होता है? दर्शन आत्म-चक्षुओं से होता है। जो विचारधारा चल पड़ती है, तो उसमें कहा जाता है कि दर्शन ज्ञान से होता है। ज्ञान तो

पढ़ने से भी हो जाता है। आत्म-चक्षुओं से उसका दर्शन होता है। इन आँखों से परमात्मा को नहीं देखा जा सकता। आँख जिससे देखती है, वह परमात्मा है, आँख जिसको देखती है, वह परमात्मा नहीं है। कान जिसकी शक्ति से सुनते हैं, वह परमात्मा है। कान जिसको सुनते है, वह परमात्मा की आवाज नहीं है। इस सम्बन्ध में केनोपनिषद का कथन है—

**यत् वाचा न वदति, येन वाग्भ्युदते।**

अर्थात् वाणी से जिसका वर्णन नहीं हो पाता, किन्तु जिसकी शक्ति से वाणी व्यक्त होती है, वह ब्रह्म है।

मन से जिसका ध्यान करते हैं, वाणी से जिसको बोलते हैं, चित्त से जिसका चिन्तन करते हैं, वह परमात्मा का स्वरूप नहीं है। इसलिए जब हम अध्यात्म



के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो यह बातें हमें ध्यान रखनी होंगी कि जो सच्चिदानन्द परमात्मा है, उसको हम प्रकृति के बन्धनों में न बाँधें। जो प्रकृति का स्वरूप है, उसके स्वरूप से हम परमात्मा के स्वरूप की तुलना नहीं कर सकते। साकार, साकार है। निराकार, निराकार है। निराकार माया इस साकार जगत को प्रकट करती है, लेकिन उसमें परमात्मा का संकल्प होता है। वेद के अनेक मन्त्रों में उसको स्पष्ट करके दर्शाने का प्रयास किया गया है, लेकिन तारतम्य वाणी के प्रकाश में यह रहस्य विदित होता है कि वास्तव में परमात्मा का स्वरूप कैसा है और हम उसे किस रूप में मानें?

सृष्टि में देखिए, हिमालय पर्वत की बर्फीली चोटियों का सौन्दर्य, फूलों का सौन्दर्य कितना मनमोहक होता है। अनेक सुन्दर पुरुषों का भी सौन्दर्य देखने को मिलता

है। इस विचित्र सृष्टि में अनेक प्रकार के सौन्दर्य की कल्पना की जाती है। क्या इनको बनाने वाला स्वयं रूप से रहित है? जब अणु का रूप हो सकता है, परमाणु का रूप हो सकता है, जीव का रूप हो सकता है, तो क्या परमात्मा का रूप नहीं हो सकता? हाँ, जैसे-तारों में बहती हुई विद्युत धारा को किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा अपनी आँखों से नहीं देखा जा सकता, लेकिन जो विद्युत धारा बह रही है, जिसमें इलेक्ट्रानों का प्रवाह चल रहा है, उसको एक वैज्ञानिक तो देख सकता है कि उसमें किस तरह से कौन-कौन सी तरंगें प्रवाहित हो रही हैं। एक सामान्य व्यक्ति द्वारा मरने वाले व्यक्ति के जीव को देखना सम्भव नहीं है। मन से हम सोचते हैं, लेकिन मन को देखा नहीं जा सकता। समाधि अवस्था में देखा जाता है कि मन का यह रूप है, चित्त का यह रूप

है, बुद्धि का यह रूप है, मोहत्तत्व का यह रूप है, अहंकार का यह रूप है, और प्रकृति की सूक्ष्मता को भी देखा जा सकता है। उसी तरह से उस आत्मिक दृष्टि द्वारा उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को भी देखा जा सकता है जो त्रिगुणातीत है, शुद्ध स्वरूप है, जिसके लिए वेदों ने "वरेण्यम् भर्गः, शुक्र ज्योतिः, आदित्य वर्णः" कह दिया। ऐसा स्वरूप कभी भी विनाश के अन्दर नहीं आता।

जिन्होंने मूर्धा में समाधिस्थ होकर भगवान शिव का ध्यान किया, तो शंकर जी का दर्शन हो जायेगा। किसी ने हनुमान जी का दर्शन किया। किसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का दर्शन किया। उन भक्तों ने यह मान लिया कि हमने सच्चिदानन्द परमात्मा का दर्शन कर लिया। यह भ्रान्ति है। उन्होंने उन महापुरुषों का दर्शन किया, जो इस संसार में भ्रमण किया करते हैं, संसार को

अपने अलौकिक कार्यों से कृत्य-कृत्य करते रहते हैं। उनका साक्षात्कार महापुरुषों का साक्षात्कार है, परमात्मा का साक्षात्कार नहीं है।

परमात्मा का अलौकिक स्वरूप इतना तेजोमयी, इतना प्रकाशमयी, इतना आनन्दमयी है कि उसके बारे में मन और बुद्धि के धरातल पर कुछ भी सोचा नहीं जा सकता। अध्यात्म का क्षेत्र इतना गहन होता है कि उसके बारे में अन्तरात्मा की साक्षी के बिना, वेद की साक्षी के बिना, या जो प्रत्यक्ष अनुभूति है उसके बिना, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए हमें ज्ञान की झोली को हमेशा खाली रखना चाहिए। हम एक सामान्य ज्ञान को लेकर चलते हैं। सारे जीवन में मनुष्य को ज्ञान सागर की एक बूँद भी मिल जाये, तो यही उसके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। केनोपनिषद् के ऋषि ने इस बारे में

सावधान किया है कि जब हम अध्यात्म के क्षेत्र में कदम रखते हैं, तो हम अपनी पूर्णता की अनुभूति न करें, क्योंकि ऐसा करना बहुत बड़ी भूल है।

सो तेता ही बोलिया, जो जहां लो गया चल।

अपने अपने मुख से, बयां करी मंजिल॥

जिसने साकारवादी पद्धति को अपनाया और अपने इष्ट का दर्शन कर लिया, तो मान लिया कि बस परमात्मा यही है। जिसने शून्य समाधि लगाई। शून्य समाधि का मतलब, जिसमें शून्य ही शून्य दिखे, जिसमें प्रकाश भी न दिखे, केवल एक शून्यवाद का अनुभव हो। उन लोगों ने मान लिया कि बस परमात्मा निराकार है। भावुक विचारधारा के वशीभूत होकर निराकार मानने वालों ने यह भी मान लिया कि परमात्मा अपने भक्तों के कल्याण

के लिये साकार रूप धारण कर प्रकट हो जाता है, यह तीसरी विचारधारा हो गई। लेकिन यदि हम तारतम वाणी के प्रकाश में देखें, तो यही लगता है कि परमात्मा न साकार है, न निराकार है, और न निराकार से साकार में प्रकट होता है। हाँ, निराकार-साकार का सम्बन्ध इस मायावी जगत से है। आपके अन्दर जो चेतन जीव है, उसका निज स्वरूप है।

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।**

**गीता २/२३**

आखिर उसका कोई रूप तो है जिसको अग्नि से जलाया नहीं जा सकता, सूर्य का तेज भी जिस जीव को जला नहीं सकता, किसी तलवार से जिसको काटा नहीं जा सकता, बिना रूप के यह कैसे सम्भव है? यह जरूर

है कि उस रूप को इन आँखों से देखा नहीं जा सकता। हाँ, समाधि अवस्था में देखा जा सकता है। आपका कारण शरीर है, वह सबको तो दिखाई नहीं पड़ता। विशेष अवस्था में उस कारण शरीर के प्रकाशमय रूप को देखा जा सकता है, सूक्ष्म शरीर के प्रकाशमय रूप को देखा जा सकता है। उसी तरह से अन्तर्दृष्टि द्वारा परमात्मा के उस त्रिगुणातीत स्वरूप को देखा जा सकता है। वहाँ मन-बुद्धि की लीला नहीं है।

सारी विकृतियाँ तब शुरू होती हैं, जब मन और बुद्धि से सोचकर उस परमात्मा के स्वरूप का निर्धारण होता है। मैं यह नहीं कहता कि मन और बुद्धि का प्रयोग न कीजिए। मन और बुद्धि द्वारा सत्य को जानने का प्रयास किया जा सकता है, लेकिन अन्तिम निर्णय नहीं लिया जा सकता है। इसलिए कठोपनिषद् में यमाचार्य जी

ने कहा—

न एषा तर्केण मतिरापनेया।

कठोपनिषद् २/९

हे नचिकेता! यह तर्क द्वारा भी नहीं पाया जा सकता है।

तर्क तो करना चाहिए, लेकिन कुतर्क नहीं करना चाहिए। तर्क सत्य को जानने की जिज्ञासा से किया गया एक प्रयास है, लेकिन अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमसत्य को देखा जा सकता है, जिसकी विवेचना इस ब्रह्मवाणी द्वारा की गई है, जो वेदों में, उपनिषदों में, दर्शन शास्त्रों में निहित है, लेकिन सामान्य बुद्धि द्वारा उस रहस्य को कभी नहीं पहचाना जा सकता।

अध्यात्म का क्षेत्र बहुत गहन होता है, लेकिन आज स्थिति दूसरी है। मानव अपने जीविका उपार्जन के लिए



व्यस्त है। उसकी उम्र कितनी है। छोटी सी तो उम्र है। कल्पना कीजिए कोई व्यक्ति ६ घण्टे सोता है। उसकी उम्र यदि ८० साल है, तो २० साल तो उसने सोने में गँवा दिया। २० साल उसने बचपन से यौवन में प्रवेश करने में खेलने-कूदने में गँवा दिया। ४० साल तो यह हो गये। गृहस्थ जीवन में यदि फँसता है, तो परिवार की जीविका उपार्जन के लिए ३० साल गँवा दिये, कितनी उम्र शेष बची? और जब खोजने चलता है कि हमें भी परमात्मा मिले, तो कहता है कहाँ है परमात्मा? कैसा है परमात्मा? एक हिन्दू समाज में ही एक हजार पन्थ हैं, वह किस पन्थ में जाये? जिस भी पन्थ में जायेगा, तो वहाँ के लोग कहेंगे कि केवल हमारा पन्थ सच्चा है, बाकी सारे झूठे हैं। यदि तुमने हमारा पन्थ ग्रहण नहीं किया, तो तुम्हें कभी भी परमात्मा नहीं मिलेगा। यदि तुमने हमारे

गुरु महाराज को नहीं अपनाया, तो तुम्हें कोई भी सत्य की राह दिखलाने वाला नहीं मिलेगा।

एक सामान्य प्राणी कहाँ जाये? कहाँ भटके? इसलिए मनुष्य को भँवरे की तरह पराग से सम्बन्ध रखना चाहिए। जिस तरह से भँवरा अनेक फूलों से पराग चूसता है। वह यह नहीं कहता कि मुझे केवल केवड़े का ही पराग चाहिए या केवल गुलाब का ही पराग चाहिए या कमल का ही पराग चाहिए। उसे जहाँ से भी पराग मिलता है, वहाँ से लेता है। उसी तरह से हमारे अन्तःकरण में यही भावना होनी चाहिए कि हमें परमात्मा के बारे में जानना है कि वह परमात्मा कहाँ है? परमात्मा कैसा है? परमात्मा कौन है और परमात्मा को पाने का मार्ग कौन सा है? हम कौन हैं? हम आये कहाँ से है? इस शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् मेरी गति क्या

होगी? इन्हीं तथ्यों पर यदि हम अपने जीवन को केन्द्रित कर पाते हैं, तो अध्यात्म की श्रेष्ठ मन्जिल प्राप्त कर सकते हैं।

जैसे कि परमात्मा को सर्वज्ञ सिद्ध करने के लिए सर्वव्यापक कहना पड़ा। परमात्मा को अखण्ड सिद्ध करने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म कहना पड़ा। यहाँ से निराकार की विचारधारा जन्म लेती है। परमात्मा अलौकिक गुणों का सागर है। "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" कहकर मनीषियों ने इसे दर्शाया है। प्रेम का सागर कहकर इसे दर्शाया है। इन गुणों का प्रकटीकरण किसी तन में हो सकता है। इसलिए साकारवाद की मान्यता यहाँ से चली। निराकारवाद, साकारवाद अपनी बुद्धिजन्य विचारधारायें हैं। सत्य एक होता है और उस सत्य को ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा परब्रह्म की कृपा के प्रकाश में हम

जान सकते हैं कि परमात्मा का स्वरूप वास्तव में कैसा होता है? इसको जानने के लिए आवश्यक है कि हम सम्प्रदायवाद की परिधि से अपने को अलग करें।

साम्प्रदायिक संकीर्णता मनुष्य को कभी भी सत्य का मार्ग प्राप्त नहीं करा सकती। यह तो हमारी अन्तरात्मा की आवाज होनी चाहिए कि सत्य क्या है? हमें अष्ट प्रमाणों से सत्य-असत्य की परीक्षा करनी चाहिए कि क्या सत्य है और क्या असत्य है? संसार में अनेक मनीषी हुए हैं। हर मनीषी की विचारधारा का सम्मान करते हुए नीर-क्षीर का विवेक करना चाहिए। हँस वही है, जो दूध से पानी को अलग कर सकता है। वैसे ही यदि हमारी विवेक-दृष्टि जाग्रत है, तो हम मत-मतान्तरों के बीच से सत्य को खोजने का प्रयास कर सकते हैं। वास्तव में सच्चाई क्या है? भीड़ के पीछे हमें नहीं चलना

चाहिये। यदि हमने भीड़ देखी, चकाचौंध देखी, तो हम सत्य को नहीं प्राप्त कर सकते।

इसलिए यजुर्वेद अध्याय ४० में कहा गया है—

हिरण्येन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्।

तत्त्वम्पूषन्नपावृणु सत्यधम्मयि दृष्टये॥

बृहदारण्यकोपनिषद् ५/१५/१

सोने के बर्तन में सत्य ढका पड़ा है। हे परमात्मा! तू उसके ढक्कन को खोल दे, जिससे मुझे सत्य प्राप्त हो जाये। यह संसार क्या है? सोने का बर्तन है। इसकी चकाचौंध से हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। हम सत्य का निर्णय नहीं कर पाते और हमें वह परमतत्त्व पूर्णतः प्राप्त नहीं हो पाता।

अभी थोड़ा प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

उस सच्चिदानन्द परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप के बारे में एक बात और चलती है। परमात्मा प्रकाशमयी है, तो कैसा है? यह विचारधारा सबके मन में हो सकती है। जब दोपहर का सूरज उगा हुआ हो, तो उस समय आप सूर्य के तरफ न देखें, केवल चारों तरफ देखें तो चारों तरफ आपको प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ेगा, धूप ही धूप खिली हुई दिखाई देगी। जो धूप दिख रही है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं मापी जा सकती।

कल्पना कीजिए कि आप एक चींटी से पूछते हैं कि कन्याकुमारी से कश्मीर तक धूप या प्रकाश का क्या आकार है, वह क्या बतायेगी? उसकी बुद्धि की एक सीमा है। उसी तरह, जो परमात्मा अनन्त प्रकाश वाला है, उसकी एक सीमा विशेष में आकृति नहीं बनाई जा सकती। इसलिए जिन मनीषियों ने परमात्मा के अनन्त

तेज को समाधि अवस्था में थोड़ा अनुभव भी किया, तो जिधर उनकी दृष्टि गई वहाँ अनन्त प्रकाश ही प्रकाश दिखा। इसलिए उन्होंने कहा कि परमात्मा क्या है? प्रकाश स्वरूप है, लेकिन निराकार है। निराकार अर्थात् आकार से रहित।

वह अलौकिक प्रकाश न गोलाकार दिख रहा है, न लम्बाकार दिख रहा है, न त्रिभुज की तरह दिख रहा है, न किसी मानवीय आकृति में बन रहा है। इसलिए वे निराकार कहने के लिए मजबूर हो गये। किन्तु यह ध्यान रहे कि प्रकाश भी रूप या कोई न कोई आकृति रखता है। आकाश में सूर्य चमक रहा है। यदि हम सूर्य को न देखें और केवल प्रकाश को ही देखें, तो क्या कहेंगे कि प्रकाश है, लेकिन आकार से रहित है। यदि हम सूर्य को देख लेते हैं, तो क्या कहेंगे कि सूर्य गोलाकार है, चन्द्रमा

गोलाकार है। उसी तरह से जो परमधाम है, प्रकृति से परे है।

दिव्ये ब्रह्मपुरे हि एष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः।

मुण्डक उपनिषद २/२/७/३९

दिव्य ब्रह्मपुर में वह परब्रह्म है और वह परब्रह्म अनन्त प्रेम का सागर है, अनन्त करुणा का सागर है, अनन्त ज्ञान का सागर है। उसके हृदय में प्रेम का सागर लहराता है। उस सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द परमात्मा को हमने एक मानवीय दृष्टिकोण से देखा है। यही कारण है कि हम परमात्मा से गिले-शिकवे करते हैं। परमात्मा से भौतिक सुखों की उपलब्धि चाहते हैं। परमात्मा को मिठाई का एक पैकेट देकर हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कराना चाहते हैं। हमारा प्रेम स्वार्थमयी प्रेम बन



गया है, वह निर्विकार प्रेम नहीं रहा।

एक राजा था। उसके राजमहल में नृत्य हो रहा था। एक नर्तकी ने अच्छा नृत्य किया। राजा सोचने लगा कि यह नर्तकी इतना अच्छा नृत्य दिखा रही है। यदि यह चाहेगी तो मैं इसको महारानी बना लूँगा, और मेरी भी इच्छा है कि मैं इसको महारानी बना लूँ क्योंकि यह मुझसे बहुत प्रेम भाव रखती है। राजा ने कहा— "तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।" राजा तो सोच रहा था कि यह कह देगी कि आप मुझे महारानी बना लीजिए। लेकिन उसका उत्तर था— "महाराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरा प्रेमी जो आपकी कैद में १२ वर्ष से है, उसको छोड़ दीजिए।" राजा सिर पकड़कर बैठ गया कि मैं तो सोचता था कि यह मुझको चाहती है, लेकिन यह मुझको नहीं चाहती। यह तो इतना अच्छा नृत्य अपने

प्रेमी को कैद से छुड़ाने के लिए कर रही थी। हम भी तो ऐसे ही करते हैं। हमारा प्रेम परमात्मा से कम है और लौकिक सुखों के लिए ज्यादा है।

एक नौकर होता है। मालिक को इस बात से कोई लेना-देना नहीं है कि नौकर के घर रोटी बनी है या नहीं। वह काम करे और जितना निर्धारित उसका धन है, वह ले जाये। बस इतना ही प्रेम हम नौकर से करते हैं। परमात्मा के साथ भी हम वैसा ही व्यवहार करते हैं। यदि परमात्मा ने (भगवान ने) हमारी प्रार्थना सुनी, तो हम परमात्मा के नाम पर दान-दक्षिणा कर सकते हैं, कुछ पूजा-पाठ करवा सकते हैं। यदि हमारी माँग पूरी नहीं हुई या हमारा कार्य परमात्मा ने पूरा नहीं किया, तो हम क्या सोचते हैं कि हमें क्या देने की जरूरत है। हम खुशियाँ किसके लिए माँगते हैं? कोई चाहेगा, हमारी नौकरी लग

जाए, कोई चाहेगा हमें बेटा मिल जाए, कोई चाहेगा हमारा व्यापार बढ़ जाए। लेकिन यदि परमात्मा साक्षात् प्रकट हो जाए, तो कोई कहेगा कि हमारा पड़ोसी हमें बड़ा तंग करता है, आप उसका नाश कर दीजिए। परमात्मा ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होने लगे तो लोग यह भी कहना शुरू कर देंगे कि परमात्मा मुझे बुखार है, आप मेरे घर में झाड़ू लगा दीजिए।

परमात्मा को मानवीय दृष्टि से देखना सत्य को कलंकित करना है। वह तेजों का तेज है, सौन्दर्य का सागर है। वेद के एक मन्त्र में कहा गया है—

उद्वयं तमसः परि रोहिन्तो नाकम् उत्तमम्।

दैवं दिवित्रा सूर्यं अगन्मज्योतिः उत्तमम्॥

अथर्ववेद ७/५३/७

हे परब्रह्म! इस तमस (पञ्चभूतात्मक जगत) से परे होकर अनन्त ज्योतिर्मयी सूर्य के समान प्रकाशमान आपको हम प्राप्त करें। आनन्दमयी धाम में हमने उस प्रकाशमयी अनन्त ज्योति वाले आपको प्राप्त किया है।

इसलिए परमात्मा का जो स्वरूप है, आवश्यक है कि हम उसको साकार से भिन्न देखें, निराकार से भिन्न देखें।

**नमस्ते प्राण विद्युते, नमस्ते प्राण वर्षते।**

**अथर्ववेद ११/४/२**

विद्युत के तुल्य कान्ति वाले उस परमात्मा को प्रणाम है। आनन्द की वर्षा करने वाले उस परमात्मा को प्रणाम है।

जो दर्शनीय है, कान्तिमान है, मनोहर है, उसको

रूप से रहित नहीं कहा जा सकता। हमें साम्प्रदायिक विचारधाराओं से कुछ अलग रहने का अभ्यास करना चाहिए। अन्तरात्मा की साक्षी को स्वीकार करना होगा। परमात्मा का स्वरूप ऐसा है, जिसको दिव्यदृष्टि से देखा जा सकता है। उससे ज्यादा कोई सुन्दर रूप न है और न कभी हो सकेगा। हमारी बुद्धि तो एक सीमा विशेष तक कार्य कर रही है। हमारी बुद्धि ने पञ्चभूतात्मक तनों को देखा है, सूरज-चाँद की ज्योतियों को देखा है। इसलिये उसी बुद्धि से हम सोच लेते हैं कि बस परमात्मा तो इतना ही है।

एक कुँआ है। उसमें एक मेंढक कहीं से उछल-कूद करते हुए गिर जाये। कल्पना कीजिए आगे क्या होगा? आगे की पीढ़ी में उस मेंढक के जितने भी बच्चे पैदा होंगे, वे क्या सोचेंगे कि इस कुँए के आगे कुछ नहीं है। कुँए में

जो मेंढक गिरा है, वह तो जानता है कि मैं बाहर से आया हूँ, लेकिन कुँए से बाहर वह स्वयं भी नहीं निकल सकता और अपने आने वाले बच्चों को भी वह यह नहीं बता पाता कि इसके आगे या इस कुँए के बाहर भी कुछ है। इसका परिणाम क्या होगा? सभी समझेंगे कि सारी सृष्टि इस कुँए में ही समाई हुई है।

वैसे ही यदि इस तथ्य को अध्यात्म पर घटित किया जाये, तो निश्चित होगा कि एक आदिनारायण का स्वरूप ही महामाया के अन्दर प्रकट होता है। उससे प्रकट होने वाले प्राणी निराकार के पर्दे को पार नहीं कर पाते हैं और उसी को परमात्मा का स्वरूप मान लेते हैं। विद्वत जगत् में दो ही विचारधारायें चलती हैं, साकार या निराकार। निराकार का साकार में प्रकट होना या साकार का निराकार में विलय होना। ये दोनों विचारधारायें मन

तथा बुद्धि के धरातल पर कही जा रही हैं। वास्तविक सत्य अलग है। इसलिए वेद ने बार-बार उसी परमात्मा के स्वरूप को दर्शाने के लिए तरह-तरह के मन्त्रों द्वारा उस परमात्मा की स्तुति की है। वेद में कहा गया है—

**वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।**

**ऋग्वेद ८/६५/४**

आनन्द की वर्षा करने वाले, सूर्य के समान प्रकाशमान, हे परब्रह्म! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

जो प्रकाश का स्वरूप है, उसको रूप से रहित नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता यही है कि हम उस प्रकाशमयी परमात्मा को नस-नाड़ी वाला कोई स्वरूप न समझें, भूख-प्यास से ग्रसित कोई तन न समझें। यदि हम निराकार और साकार की परिधि से परे देखते हैं,

तब पता चलेगा कि परमात्मा का स्वरूप कैसा है।

यही स्थिति योग में देखी जाती है। कोई भी योगी यह नहीं कह सकता कि परमात्मा अन्धेरे को कहते हैं। हर महापुरुष के चारों ओर आभामण्डल रहता है। किसी भी महापुरुष का जब चित्र बनाते हैं, तो उसके चारों ओर आभामण्डल दर्शाया जाता है, क्यों? गायत्री मन्त्र लिखिए, ॐ लिखिए, उसके चारों ओर प्रकाश दर्शाया जाता है।

हृद से परे बेहृद है, बेहृद के परे अक्षर है, और उस अक्षर से परे है वह अक्षरातीत। उस अक्षरातीत के स्वरूप के बारे में इस सामान्य बुद्धि से यदि हम यह सोच लें कि परमात्मा ऐसा ही है, तो यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है। हमने महापुरुषों का जीवन चरित्र देखा। चाहे वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का जीवन चरित्र हो, हनुमान जी का



जीवन चरित्र हो, योगेश्वर श्री कृष्ण जी का जीवन चरित्र हो, अथवा भगवान शिव का जीवन चरित्र हो। परमात्मा को इस सीमा के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता।

परमात्मा ने इस सृष्टि को बनाया है। जब सृष्टि नहीं थी, तब भी वह परमात्मा था। जब मनुष्य और यह सृष्टि लय को प्राप्त हो जायेगी, तब भी वह परमात्मा रहेगा। इस सृष्टि में पैदा होने वाला मनुष्य महापुरुष का स्वरूप हो सकता है, किन्तु सच्चिदानन्द परमात्मा नहीं बन सकता। हाँ, उसको जानकर, उसको आत्मस्थ करके, उसको अपने हृदय मन्दिर में बसाकर तदोगत हो सकता है, उसके जैसा निर्विकार हो सकता है, उसकी तरह प्रेममयी राह पर चल सकता है, लेकिन जो साक्षात् अनादि अद्वितीय शोभा वाला परब्रह्म है, उसकी समानता करने का अधिकार किसी के भी पास नहीं है। इसलिए

अध्यात्म यही कहता है कि हम उस सच्चिदानन्द परमात्मा को पाने की राह पर चलें, लेकिन अपनी झोली को हमेशा खाली समझें, पूर्णता का भाव न लें। पूर्ण तो एकमात्र वही परमात्मा है। यह जरूर तुलसीदास जी ने कहा है—

**जानत तुमहि तमहिं हो जाई।**

हे परब्रह्म! तुम्हें जानने वाला तुम्हारे जैसा ही हो जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह साक्षात् परमात्मा हो जाता है। जानने से पहले तो ऐसा नहीं था, उसको जानकर ही तो ऐसा हुआ है। जैसे अग्नि और लोहे का सम्पर्क होता है, तो लोहा भी अग्नि के समान दहकने लगता है। उसी तरह से ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसके तदोगत हुआ जाता है, उसको कहते हैं "अहं ब्रह्मास्मि"। लेकिन जो सच्चिदानन्द परमात्मा है, वह सभी द्वन्द्वों से

परे है, क्लेश-कर्म की वासना से रहित है, जन्म-मरण की प्रवृत्ति से रहित है, सुख-दुख की परिधि से परे है, साकार और निराकार की परिधियों से परे है।

उस परमात्मा के त्रिगुणातीत स्वरूप को दर्शाने के लिए अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है कि परमात्मा रूप से रहित है। निराकार, नर्क, दुर्गा, नेति- ये चारों शब्द वेदों में कहीं भी नहीं हैं। हाँ, इनके भावों की व्याख्या हम अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार पर करते हैं। कोई परमात्मा को साकार मान लेता है, कोई निराकार मान लेता है, कोई निराकार से साकार में परिवर्तित रूप मानता है, और कोई साकार से निराकार में परिवर्तित रूप मानता है। लेकिन परमात्मा परिवर्तन से रहित है, जन्म से रहित है, मरण से रहित है, नस-नाड़ी से रहित

है। आज वह जैसा है, अनन्त काल पूर्व वैसा ही था, और अनन्त काल पर्यन्त ऐसा ही रहेगा।

उस परमात्मा के स्वरूप के विषय में हम अपनी मानवीय बुद्धि द्वारा कुछ भी नहीं कह सकते हैं। परमात्मा का स्वरूप क्या है, इसको जानने के लिए हमें तारतम वाणी के अन्दर प्रवेश करना होगा। वह तारतम वाणी जो महामति जी के धाम हृदय से प्रकट हुई। उसके द्वारा दर्शाया गया है कि वेद में परमात्मा के उस स्वरूप को किस प्रकार व्यक्त किया गया है। परमात्मा के स्वरूप, धाम के बारे में जिसको और अधिक जानना हो, वे सत्याञ्जलि ग्रन्थ का चिन्तन-मनन करें। उसमें वेदों, उपनिषदों, और दर्शनों के प्रमाणों से विस्तारपूर्वक समझाया गया है। अधिक गहराई से जानने के लिए श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी का अनुसरण करें।

अध्यात्म कहता है कि हम अपने हृदय को विशाल बनायें, संकीर्णताओं से न भरें। सागर का हृदय कितना विशाल होता है। न जाने कितने गन्दे नाले उसमें गिरते हैं, लेकिन वह सबको अपने में समा लेता है। जिस तरह से हँस केवल मोती चुगता है, दूध में से केवल दूध को ग्रहण करके पानी को छोड़ देता है, उसी तरह से साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों में रहते हुये भी हम सत्य को जानने और पाने का प्रयास करें। अपनी जिज्ञासा को बनाये रखें। इसलिए वेदान्त का पहला सूत्र है—

**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।                      वेदान्त दर्शन १/१/१**

अर्थात् ब्रह्म जिज्ञासा का विषय है।

रूढ़िवादिता हमें सत्य तक नहीं ले जाएगी, लेकिन खोज की प्रवृत्ति हमें सत्य तक ले जाती है। इसलिए

ब्रह्मवाणी में कहा है—

**खोज बड़ी संसार, रे तुम खोजो रे साधो।**

**किरंतन ६/१**

यदि हमारे अन्दर सत्य को जानने की जिज्ञासा है, यदि हमारा हृदय शुद्ध है और हम उस प्रियतम परब्रह्म को पाना चाहते हैं, तो न हम साकार में उलझें और न निराकार में उलझें। सबसे परे उस सच्चिदानन्द परब्रह्म के त्रिगुणातीत स्वरूप का चिन्तन करें, जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता, जिसको देखने के बाद कुछ देखना शेष नहीं रह जाता, और जिसको पाने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता।

आगे का विषय होगा कि हम उस परमात्मा को किस तरह से पायें? माला से जप करें या तप करें या

ध्यान करें। ध्यान करें तो किस तरह से करें? ध्यान की कौन-कौन सी पद्धतियाँ हैं? कौन सी पद्धति द्वारा उस परमात्मा का साक्षात्कार होता है, इन विषयों का आगे वर्णन होगा।



## पंचम अध्याय

परब्रह्म के साक्षात्कार का मार्ग क्या है?

प्राणाय नमो यस्य सर्वं इदं वशे।

यो भूतः सर्वस्य ईश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

उस सच्चिदानन्द परब्रह्म के चरणों में प्रणाम है , जिसकी सत्ता के वशीभूत असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। संसार के समस्त प्राणी जिसकी कृपा-कटाक्ष से जीवन प्राप्त करते हैं।

आज का मुख्य विषय यह है कि जिस सच्चिदानन्द परब्रह्म के धाम, स्वरूप के सम्बन्ध में गत दो दिवसों से व्याख्यान चल रहा है, उसको पाने का मार्ग क्या है? संसार में अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। कोई पद्धति शरीर के आधार पर होती है, कोई मन और बुद्धि के आधार



पर होती है, कोई पद्धति जीव के शुद्ध स्वरूप पर आधारित होती है, तो कोई आत्म-दृष्टि से होती है। सभी साधना पद्धतियाँ इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती हैं।

यह शरीर क्या है?

**शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।**

शरीर उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाने का एक साधन है। यदि यह शरीर भोगों में लिप्त हो गया तो इस जीव को चौरासी लाख योनियों का नर्क भोगना पड़ता है, और यदि इसी शरीर से सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाने का प्रयास किया जाता है तो उसके अन्दर बैठी हुई चेतना शाश्वत आनन्द में विहार करती है। शरीर के आधार पर जो भक्ति की जाती है, उसके अलग-अलग रूप हैं। कोई मन्दिर में परिक्रमा करता है, तो कोई काबे की परिक्रमा

करता है। सभी मतों में किसी न किसी रूप से परिक्रमा की यह प्रक्रिया जुड़ी हुई है, जो पैरों से चलकर की जाती है।

दूसरा स्तर होता है बुद्धि के धरातल पर, मन के आधार पर होने वाली साधना। इसमें जप और यज्ञ आदि है। जप योग, तप योग, मन्त्र योग, नाद योग, सभी इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। हठ योग भी इसी के अन्तर्गत आता है। जप का तात्पर्य यह है कि हम परमात्मा के नाम को किसी न किसी रूप में जपते हैं। इसके लिये माला की प्रक्रिया प्रायः अधिकतर पन्थों में अपनायी जाती है। हिन्दू धर्म के अधिकतर सम्प्रदायों में माला फेरने की परम्परा है। मुस्लिम जन भी माला का प्रयोग करते हैं, जिसे तस्वीह कहते हैं। इसी तरह से बौद्ध मत में भी यह प्रक्रिया चलती है।

जप का अर्थ क्या है? मन, बुद्धि के धरातल पर परमात्मा के नाम का जप किया जाता है, चाहे वह किसी नाम को मानता हो। कोई "हक" का जप करता है, कोई "ॐ" का जप करता है, कोई गायत्री मन्त्र का जप करता है, तो कोई अलग-अलग साम्प्रदायिक मन्त्रों का जप करते हैं। यह मान्यता है कि जप करने से हमारी वैसी ही भावना हो जाती है। लेकिन यह ध्यान रहे, योगदर्शन में कहा है—

**तत् जपः तदर्थभावनम्।**

**योग दर्शन १/२८**

जप कैसा होना चाहिए? अर्थ की भावना से होना चाहिए। आप शक्कर-शक्कर कहेंगे, तो क्या आपका मुँह मीठा हो जायेगा? एक कैसेट या सी.डी. में मन्त्र टेप कर दीजिए और सौ साल तक उससे आवाज निकलती रहे तो क्या वह कैसेट या सी.डी. परमहंस हो जायेगी? कभी

नहीं, जबकि आवाज तो निकल रही है।

जप तीन तरह के होते हैं— मानसिक, वाचिक, उपांशु। मानसिक अर्थात् मन में, वाचिक अर्थात् बोलकर, और उपांश अर्थात् होठों में बुदबुदाकर। तीनों प्रकार के जप द्वारा साधना की जाती है। इससे सिद्धियाँ मिलती हैं। योगदर्शन में लिखा है, मन्त्र से, तप से, एवं औषधियों से सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि का तात्पर्य क्या है? जो लक्ष्य हम प्राप्त करना चाहते हैं, वह प्राप्त हो जाये। सिद्धि को प्राप्त करने वाले को सिद्ध कहते हैं।

लेकिन यह कहीं नहीं लिखा है कि जप से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। जप से एक लाभ यह होता है कि हमारे मन में इष्ट का भाव अखण्ड रूप से बस जाता है। मन एकाग्र होता है और हम कुछ इच्छित शक्तियों को प्राप्त कर लेते हैं। सूर्य की धूप फैली हुई है, निरर्थक है।

इस धूप को आतिशी शीशे से एक जगह इकट्ठा कर दिया जाये, तो आग जैसी चिंगारी निकलने लगती है और ज्वाला भड़क उठती है।

खेत में घास लगी हुई है। उसमें बकरी भी आती है और चर जाती है। यदि सारी घास को इकट्ठा करके रस्सी बट दी जाये, तो उस रस्सी से मतवाले हाथी को भी बाँधा जा सकता है। यानी जीव के साथ जो शक्ति जुड़ी हुई है, वह अन्तःकरण और इन्द्रियों के माध्यम से विषयों में व्यर्थ हो रही है। उस शक्ति को एकत्रित करना है।

योग का लक्ष्य यह है कि हमारी जो चेतना है, उसको हम जीव कहें, हँस कहें, या आत्मा कहें, उसका मिलन उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से होना चाहिए। बीच में बाधाएँ डालती हैं सिद्धियाँ। जैसे, मन्त्र के जप से जो

सिद्धि मिलती है, उसका संसार में प्रदर्शन करने पर क्या मिलता है? चारों तरफ प्रतिष्ठा। आत्म-तत्व को प्राप्त करने वाला कोई भी योगी कभी भी प्रतिष्ठा को गले नहीं लगाना चाहेगा, क्योंकि प्रतिष्ठा विष के समान है।

आत्म-कल्याण चाहने वाले को अपमान को अमृत मानना चाहिए और सम्मान को विष के समान समझना चाहिए, क्योंकि लोकेषणा हमारे और परमात्मा के बीच में बहुत बड़ा पर्दा है। जप से थोड़ी सी सिद्धि प्राप्त हो जाती है, लेकिन यह जीवन का परम लक्ष्य नहीं है। जप की ऐसी ही प्रक्रिया चल रही है और वह भी अर्थ की भावना से नहीं। समाज में एक लकीर चल पड़ती है कि हमें इस मन्त्र का इतनी बार जप करना है।

मन एकाग्र करने से इतनी शक्ति मिलती है कि विदेश वालों ने भी इसका प्रयोग किया है। आप यदि

अपने मन को किसी बिन्दु पर तीन घण्टे या उससे अधिक एकाग्र कर लेते हैं, तो अपने संकल्प से कुछ भी कर सकते हैं। विदेश में एक व्यक्ति ने घड़ी की सुइयों को उल्टा चलाकर दिखा दिया था। इसी प्रक्रिया से किसी को सम्मोहित भी किया जाता है। योग का उद्देश्य यह नहीं होता कि वह संसार में सिद्धि – प्रदर्शन करे या सम्मोहन का प्रयोग करे। इन सबसे परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता।

गायत्री मन्त्र के जप की भी प्रक्रिया है। मन्त्र में कहा गया है कि उस परमात्मा के तेजोमयी, आनन्दमयी स्वरूप को हम धारण करें। धारणा से ध्यान होगा, ध्यान से समाधि होगी, और समाधि से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। मन्त्र में ज्ञान निहित होता है। उस ज्ञान का उपयोग न करके एक परम्परा चला दी जाती है

कि हमें यह कार्य करना है। जैसे हिन्दू समाज में महामृत्युंजय मन्त्र का बहुत प्रचलन है। बीमार हो, संकट पड़ जाये तो क्या कहते हैं, महामृत्युंजय मन्त्र का जप कर लो, भगवान शिव बचा लेंगे। उस मन्त्र में तो कहा गया है—

**त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**

**यजुर्वेद ३/६०**

त्रयम्बकं किसको कहते हैं? जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, और संहार करने का गुण हो, उसको त्रयम्बकं कहते हैं। उस मंत्र में ज्ञान निहित है। उस ज्ञान को आचरण में लाने के लिए वेद में कहा गया है। वेद, उपनिषद्, दर्शन कभी कर्मकाण्ड की बातें नहीं करते कि माला लेकर जप कीजिए। वेदों, उपनिषदों, एवं दर्शन



शास्त्रों का उपदेश है कि जिसका हम मानसिक जप कर रहे हैं, उसमें अर्थ की भावना हो।

एक हिन्दू परमात्मा का किसी नाम से जप करता है। एक मुस्लिम अरबी भाषा में नाम लेकर परमात्मा को पुकारता है। एक क्रिश्चियन चाहे अँग्रेजी भाषा में जप करे या किसी अन्य भाषा में, आखिर परमात्मा तो सबका है। अनुभूति तो अपने-अपने स्तर पर होगी। परमात्मा किसी चौपाई से, किसी मन्त्र से, किसी श्लोक से, किसी शब्द से बन्धा हुआ नहीं है, वह सबका है। हमारी पृथ्वी जैसी असंख्य पृथ्वियाँ उसकी सृष्टि में हैं। क्या वह किसी भाषा के बन्धन में रहेगा कि इसी मन्त्र से जो जप करेगा, मैं उसी को मिलूँगा? लेकिन हाँ, यह ध्यान रहे कि परमात्मा वाणी से परे है। सृष्टि में कोई भी प्राणी किसी भी शब्द से उस परमात्मा को पुकारता है, तो यदि

उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा तो उसको कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी। जप योग की बस इतनी सी उपलब्धि है।

इसी के अन्तर्गत मन्त्र योग भी आता है। मन्त्र योग में उस परमात्मा के मन्त्र का चिन्तन करते हुये जप की प्रक्रिया है। थोड़ा बहुत उससे धारणा, ध्यान भी जुड़ जाता है, इसी को कहते हैं "भावातीत ध्यान"। यह पद्धति महेश योगी ने चलायी और संसार के अनेक देशों में सम्पन्न बुद्धिजीवी वर्ग भी इसको अपनाता है।

तप योग क्या है? तप से क्या होता है?

ऋतं तपः, दमः तपः, सत्यं तपः, स्वाध्याय तपः, ब्रह्मचर्यं तपः।

आजकल तप की उल्टी व्याख्या की जाती है। कोई धूप में नंगे शरीर बैठ जाता है और चारों तरफ आग

सुलगा लेता है। क्या कहेगा, मैं तपस्या कर रहा हूँ। कोई एक हाथ ऊपर खड़ा कर देगा, कोई दोनों पाँव से कई-कई वर्ष खड़ा रहेगा, और क्या कहेगा कि मैं तप कर रहा हूँ। यह तप नहीं है। यह तो शरीर को पीड़ा देना है। अपने हृदय को पीड़ा देना है। अपने हृदय को पीड़ा देने को तपस्या नहीं कहते। तप का अर्थ है शम। अपने मनोविकारों का शमन करना। सांसारिक भोग की इच्छा से बिल्कुल अलग हो जाना, यह है तप। दमन तप है। इन्द्रियों को विषयों में न जाने देना तप है, यथार्थ सत्य का पालन करना ही तप है।

**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियं हितं च यत्।**

**गीता १७/१५**

वाणी का तप है— हम ऐसी वाणी बोलें, जिससे

किसी के हृदय को पीड़ा न हो। शरीर का तप है— शुभ कर्म करना। मन का तप है— मन को विषयों में न जाने देना। मन का तप, वाणी का तप, शरीर का तप अलग— अलग हैं, क्योंकि किसी भी शास्त्र में नहीं लिखा है कि शीतल—बर्फीले जल में खड़े रहना तप है। यह तो शरीर को पीड़ा देना है, जो तामसिक कार्य है।

सूरदास जी के मन में विकार पैदा हुआ, तो उन्होंने अपनी आँखें फोड़ डालीं। आँखों ने क्या बिगाड़ा था ? इन्हीं आँखों से तो उन्होंने अपने इष्ट का भी दर्शन किया था। इन्हीं आँखों से तो हम माता को देखते हैं, पिता को देखते हैं, गुरु को भी देखते हैं। बेचारी आँख का दोष क्या है? आँख को नियन्त्रित करने वाला है मन। मन को नियन्त्रित करने वाला है चित्त। चित्त को नियन्त्रित करने वाली है बुद्धि, और बुद्धि को नियन्त्रित करने वाला है

अहम्।

गाय मर जायेगी लेकिन माँस नहीं खायेगी। वह जब भी खाएगी तो घास ही खाएगी, क्योंकि उसके जीव के अहंकार में यह संस्कार भरा है कि मैं गाय हूँ और गाय को घास ही खाना है। एक शेर मर सकता है, लेकिन कभी घास नहीं खा सकता क्योंकि उसके अहम् में यह बात गूँज रही है कि मैं शेर हूँ और मुझे माँस ही खाना है। जिसका अहंकार जैसा होता है, उसकी बुद्धि वैसी ही होती है। जैसी बुद्धि होती है, चित्त के संस्कार भी वैसे ही होते हैं, मन में वैसी ही विचारधारा होती है, और इन्द्रियाँ भी वैसे ही कार्य करती हैं।

जैसे गाय के चित्त में घास खाने के संस्कार हैं, शेर में माँस खाने के संस्कार हैं, और यह संस्कार इसी जन्म तक सीमित हैं। कदाचित् गाय का जीव अगली योनि में

शेरनी के अन्दर आ जाये, तो पैतृक रूप से उसके चित्त में माँस खाने का संस्कार आ जायेगा। यदि शेरनी के बच्चे को जन्म लेते ही दूध पिलाया जाये, तो माँस खाने का संस्कार उसके अन्दर नहीं आयेगा। वह सामने रखे हुए माँस को देखकर भी माँस नहीं खायेगा। इसलिए चित्त के संस्कारों के आधार पर मन संकल्प-विकल्प करता है। मन के संकल्प-विकल्प के आधार पर इन्द्रियों में विकार होता है। इन्द्रियाँ या तो विषय-भोग की तरफ उन्मुख होती हैं या विषयों से हट जाती हैं। इनको नियन्त्रित करने का साधन है- ज्ञान का प्रकाश, बुद्धि की निर्मलता, और आहार-विहार की शुद्धता। योग में इन्हीं चीजों पर ध्यान दिया जाता है।

तप का उद्देश्य होता है, हम तपायें। तपाने का मतलब यह नहीं कि आग में तपायें। लोगों ने क्या समझ

लिया कि चारों तरफ आग सुलगा लो, तो इसको क्या कहेंगे, पञ्चाग्नि तप। यह पञ्चाग्नि तप नहीं है।

ऋतं पिबन्तौ सुकतस्य लोके गुहांप्रविष्टौ परमे परार्द्धे।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति, पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥

## कठोपनिषद तृतीय वल्ली १

पञ्चाग्नि विद्या तो समत्व योग से सम्बन्धित है। पाँच अग्रगण्य भूमिकाओं में हम कैसे परमात्मा का ध्यान करें। यह पञ्चाग्नि विद्या योग से सम्बन्धित है, न कि पाँच जगह आग सुलगा लेना। यदि आग सुलगा लेने से तपस्या होती है, तो जितने चूल्हा जलाने वाले हैं, सारे तपस्वी हो जायें। फिर क्या आवश्यकता है जँगल में जाने की? शरीर को पीड़ा देना तप नहीं है।

तप योग से बस आपका अन्तःकरण निर्मल हो

सकता है, लेकिन परमात्मा का साक्षात्कार तब भी नहीं होगा। आपका अन्तःकरण निर्मल है लेकिन उसमें प्रियतम की छवि नहीं बसी, तो लाभ नहीं है। हाँ, यह सब भूमिकायें हैं। महल बनाते हैं तो नींव खोदी जाती है, नींव में गिट्टी भरी जाती है, तरह-तरह की प्रक्रिया अपनाई जाती है। उसी तरह से यह नींव है। चाहे मन्त्र योग हो या तप योग।

आगे हम हठ योग के विषय पर चलते हैं। हठ योग के अन्तर्गत नाद योग आता है। तरह-तरह की मुद्राओं का साधन किया जाता है। नेती, धौति, बस्ती, त्राटक, कपालभाति आदि क्रियाएँ की जाती हैं। इनसे भी तरह-तरह की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हठयोग द्वारा शरीर का शुद्धिकरण होता है। आजकल "योग" शब्द को "योगा" में परिवर्तित कर दिया गया है। कोई व्यक्ति जब योगा कहता



है, तो वह यह दर्शाता है कि वह बहुत अच्छी अँग्रेजी जानता है और बहुत समझदार है। योग का अर्थ क्या है?

**संयोगः योगः इति उक्तः जीवात्म परमात्मनः।**

चेतना का उस सच्चिदानन्द परब्रह्म से मिलन ही योग है। योग की एक दूसरी परिभाषा पतञ्जलि देते हैं—

**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**

**योग दर्शन १/२**

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। तब दृष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति होती है। चित्त की वृत्तियाँ क्या हैं?

चित्त में जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान होते हैं। जैसे, सी.डी. के अन्दर पूरी पिक्चर (चलचित्र) भरी होती है। जब उसको चलाया जाता है, तो पर्दे पर दृश्य बनना शुरू हो जाता है। उसी तरह, हमारे चित्त में

जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं। कितनी योनियों में हम पशु के रूप में रहे, कितने जन्मों में हम पक्षी योनि में रहे, कितने जन्मों में हम मनुष्य की योनि में रहे। सारे जन्मों का दृश्य चित्त के संस्कारों में समाहित होता है।

चित्त के संस्कारों में समाधिस्थ होकर कोई भी योगी जान सकता है कि मैं कितने जन्मों में क्या रहा ? गौतम बुद्ध को जब बुद्धत्व प्राप्त हुआ, तो उन्होंने अपने पाँच सौ से ज्यादा जन्मों की कहानी जान ली कि मैं किस-किस जन्म में क्या था। इसी तरह से महावीर स्वामी को बोध हुआ था। जितने भी बड़े-बड़े योगेश्वर हुये हैं, सभी ने यह जाना था कि मैं किस-किस जन्म में क्या-क्या था, लेकिन यह परमात्मा का दर्शन नहीं है। सिद्धि-विभूतियों को प्राप्त कर लेना परमात्मा के साक्षात्कार से कोशों दूर ले जाता है।

जैसा कि मैंने कहा कि सूर्य के प्रकाश को जब एक जगह केन्द्रित कर दिया जाता है, तो उससे कितनी चमत्कारिक क्रियाएँ होती हैं— भोजन बना सकते हैं, पानी गरम कर सकते हैं, अग्नि की लपटें निकाल सकते हैं। ऐसे सूर्य की धूप चाहे जितनी भी पड़े, लेकिन इससे कोई कार्य नहीं किया जा सकता। हमारे जीव की भी शक्ति जब अधोगति की तरफ मुड़ती है, संसार के विषयों की तरफ मुड़ती है, तो मनुष्य उस समय जान ही नहीं पाता कि मैं हूँ क्या?

एक ऐसे प्राणी की कल्पना कीजिए जो भूखा और नंगा है, फुटपाथ पर सो रहा है। बेचारे के पास प्रचुर कपड़ा भी नहीं है। एक व्यक्ति है, जो कसाईखाने में पड़ा है। पशुओं की गर्दन काट रहा है, माँस खा रहा है, शराब पी रहा है, सो रहा है। एक व्यक्ति है, जो अफीम खा रहा

है, नशे में पड़ा है। उसे कुछ पता नहीं है। एक व्यक्ति ऐसा भी है, जो गुफा में बैठा है, आत्मद्रष्टा होकर देख रहा है। संसार उसके सामने स्वप्न के समान है। चाहे हीरे-मोती के महल हों, उसको मोह नहीं है। वह देखता है कि ये हीरे-मोती के महल सब नश्वर हैं। मैं इन्हें लेकर क्या करूँगा? उसके लिए स्वर्ग और वैकुण्ठ के सुख भी नश्वर हैं। उनसे घृणा करता है। इसका कारण क्या है? उसने चेतन तत्व को देखा है। वह भौतिक पदार्थों में फँसने वाला नहीं है। इन्द्रियों के विषय उसको फँसा नहीं सकते, क्योंकि वह इनसे परे हो चुका है। वह आत्मदर्शी है।

एक बार सिकन्दर ने अपनी सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया। एक महात्मा जी लेटे हुए थे। सिकन्दर के सैनिकों ने आकर कहा – "महात्मा जी! उठो! देखते

नहीं, विश्वविजयी सिकन्दर आ रहा है। उठकर उसका अभिवादन करो।" वह महात्मा जी वैसे ही लेटे रहे। दूसरा सैनिक आया। फिर इस सैनिक ने वही बोला। इस तरह बार-बार सैनिक आते रहे, लेकिन वह चुपचाप लेटे रहे और मुस्कुराते हुए सुनते रहे। इतने में सिकन्दर आ गया। सिकन्दर ने आवाज लगाई- "महात्मा जी! तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा, मैं विश्वविजयी सिकन्दर हूँ। क्या तुम उठकर मेरा अभिवादन नहीं कर सकते, नंग-धड़ंग रास्ते में पड़े हो?"

महात्मा जी ने लेटे-लेटे ही उत्तर दिया- "सिकन्दर! तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह, और मद के आधीन हो। और जिस काम, क्रोध, लोभ, मोह के तुम अधीन हो, मैंने उसको अपने चरणों के नीचे दबा रखा है, अपने वश में कर रखा है। जब तुम मेरे दासों के भी

दास हो, तो तुम्हारा अभिवादन मैं करूँ कि मेरा अभिवादन तुम करोगे?" सिकन्दर ने सिर नीचा कर लिया। उस महात्मा के पास कोई कपड़ा नहीं था। उसने अपनी कमर में मूँज लपेटा हुआ था, और दूसरी तरफ सिकन्दर था जिसने हीरे-मोती के आभूषण धारण किये हुये थे, विश्वविजयी का तमगा लगाए था, लेकिन क्या हुआ? एक आत्मदर्शी के सामने उसको नतमस्तक होना पड़ा।

भर्तृहरि ने यही कहा है— "धैर्यम् यस्य पिता।" धैर्य जिसका पिता हो, क्षमा माता और शान्ति पत्नी हो, दिशायें जिसके वस्त्र हों, हाथों का तकिया हो, वृक्षों से गिरे हुये फल ही जिसका भोजन हो, नदियों का जल ही जिसका पेय हो, ऐसे व्यक्ति को संसार में किसी का भी भय नहीं होता। भय कौन करता है? जिसको लोकेषणा,

वित्तेष्णा, और दारेषणा में आसक्ति होती है। वह ही किसी से भयभीत हो सकता है। जिसको सच्चिदानन्द परमात्मा से प्रेम है, वह किसी से क्यों भयभीत हो, चाहे कोई चक्रवर्ती सम्राट ही क्यों न हो?

अब प्रश्न यह है कि परमात्मा को पाने के लिए कौन से साधन का प्रयोग किया जाये? पहले जिस हठ योग की बात चल रही थी, उस हठ योग से सिद्धियाँ पायी जाती हैं और उन सिद्धियों के सहारे मनुष्य तरह-तरह के चमत्कार दिखाता है। राज योग के विभूतिपाद में भी यही बात कही गई है। यदि आप नाभिचक्र में ध्यान करते हैं, तो यहीं समाधि में बैठे – बैठे आप सम्पूर्ण तारामण्डलों को देख सकते हैं।

संयम क्या है? धारणा, ध्यान, और समाधि का मिला हुआ रूप संयम कहलाता है। यदि चन्द्रमा में ध्यान

(संयम) करते हैं, तो प्रियदर्शी होते हैं। सूर्य नाड़ी में ध्यान करते हैं, तो उसका अलग लाभ है, आप सभी भुवनों का अनुभव कर सकते हैं। यदि आपने प्राणायाम से अपने शरीर को हल्का कर लिया और रुई जैसी वस्तुओं में आप ध्यान करेंगे, तो संकल्प से आपका शरीर भी हल्का हो जायेगा तथा आप पक्षी की तरह आकाश में उड़ने लगेंगे। यह कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन यदि आप पक्षी की तरह आकाश में उड़ने लगे, तो दुनिया क्या कहेगी कि देखो! कितने बड़े सिद्ध पुरुष जा रहे हैं। श्री प्राणनाथ जी की वाणी में एक चौपाई आती है—

आगम भाखो मन की परखो, सूझे चौदे भवन।

मृतक को जीवित करो, पर घर की न होवे गम॥



आगम भाखना अर्थात् भविष्य की बातें जानना। यह कोई बड़ी बात नहीं है। जो भविष्य की बातें जान जाता है, दुनिया उसे भगवान मानकर पूजती है। लेकिन यह क्या है? यह योग की प्राथमिक कक्षा है। हाँ, दुनिया तो आप को भगवान मानकर पूजेगी, परमात्मा मानकर पूजेगी। यह दुनिया ऐसा करती है, अपने स्वार्थ के लिए।

एक महात्मा जी ने खूब तपस्या की। उनको उनके इष्ट देव ने दर्शन दिया और पूछा, क्या चाहते हो? उस सज्जन ने कहा, आप ऐसा वर दीजिए कि जिसको चाहूँ जिन्दा कर दूँ। उन्होंने कहा, ऐसा तो नहीं हो सकता क्योंकि प्रकृति का नियम टूट जायेगा। लेकिन हाँ, आप अपनी जितनी भी उम्र किसी व्यक्ति को देंगे, वह व्यक्ति उतने समय के लिए जिन्दा हो जायेगा।

महात्मा जी ने ऐसा करना शुरू कर दिया। दया

आती गई, पता चला कि कहीं कोई मर गया है और घर वाले रो रहे हैं, तो अपनी उम्र का कुछ हिस्सा दे दिया। अपनी उम्र का हिस्सा देते-देते कुछ लोग जिन्दा तो हो गये, लेकिन उनकी उम्र समाप्त हो गई। वे खुद मर गये थे, लेकिन उनकी कुटिया के बाहर मरे हुए लोगों को लिए लोग लाइन लगाये खड़े थे। उन्हें बताया गया कि महात्मा जी तो खुद मर चुके हैं, वह किसी को कैसे जिन्दा करेंगे? भीड़ कह रही थी कि हमें यह नहीं सुनना है, हमें तो जिन मरे हुये लोगों को हम लाये हुये हैं, उनको जिन्दा करवाना है, हमारा नम्बर आना ही चाहिए। यह दुनिया का मानसिक स्तर है।

आपने सिद्धि प्राप्त कर ली भविष्य बताने वाली कि भविष्य में क्या होने वाला है। किसी के घर चोरी हो गई और आपने बता दिया कि अमुक व्यक्ति चोरी करके

सामान ले गया है, तो परिणाम क्या होगा? उस चोर का प्रहार किस पर होगा? आप पर। जिसका स्वार्थ पूरा होगा, वह आपको पूजेगा, और जिसका स्वार्थ पूरा नहीं होगा, वह आपको दुश्मन की तरह मानेगा। इसलिए योग का प्रयोग केवल परमात्मा के साक्षात्कार के लिए होना चाहिए, अपनी आत्मा के साक्षात्कार के लिए होना चाहिए।

यदि आपने भविष्य की बातें बतानी शुरू कर दीं, तो संसार योग को चमत्कार के रूप में लेने लगेगा और जो उसका वास्तविक लक्ष्य है, परमात्मा का मिलन, जिसके बराबर कोई आनन्द नहीं है, जिसके बराबर कोई लक्ष्य नहीं है, उससे हम भटक जायेंगे। जैसे कोई व्यक्ति हीरों को छोड़कर काँच के टुकड़ों को अपनाकर उसी में आनन्दित होता है, उसी तरह से आत्म-साक्षात्कार

और परमात्मा के साक्षात्कार को छोड़कर संसार में अपनी इच्छा पूरी कराने के लिए सिद्धि का प्रदर्शन किया जाता है। यह मनीषियों द्वारा वर्जित है। महर्षि पतञ्जलि ने विभूतियों का वर्णन करते हुए भी मना कर दिया कि जिन्हें आत्म-साक्षात्कार करना हो, परमात्मा का साक्षात्कार करना हो, वह इन विभूतियों के चक्कर में न पड़ें।

श्री प्राणनाथ जी की वाणी का कथन है—

## आगम भाखो

भविष्य की बातें जान लो। भविष्य की बातें जानने के लिए क्या किया जाता है? जिसने अपनी सुषुम्ना (आन्तरिक) प्रवाहित कर ली, वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। भूत, भविष्य, वर्तमान— तीनों की बातें जान जाता है।

यह कुछ भी कठिन नहीं है। योग में समाधि द्वारा जब आप चौथी भूमिका में प्रवेश करेंगे, तो दसवें द्वार में आपकी सुषुम्ना प्रवाहित हो जाएगी। आप संकल्प मात्र से सब कुछ जान सकते हैं कि अतीत में क्या हुआ था, वर्तमान में क्या हो रहा है और भविष्य में क्या होगा।

## मन की परखो,

दूसरों के मन की बातों को जान लेना। इसको एक दृष्टान्त से समझिए। यहाँ एक रेडियो स्टेशन है और पूरे देश में एक लाख रेडियो बज रहे हैं। यहाँ से जो कुछ भेजा जाता है, बोला जाता है, पूरे देश के रेडियो उसको ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ तक कि लन्दन में भी जो बोला जाता है, पूरी दुनिया के रेडियो में वह आवाज आती है, यह कैसे सम्भव है? रेडियो से रहित लोगों को सुनाई नहीं देता। जहाँ रेडियो बज रहा होता है, उसकी सुई

मीटर पर जब लगायी जाती है, तो उस रेडियो से आवाज आने लगती है। यदि आज इतना चमत्कार है, तो जो अपने मन को जीत लेता है और उसे निर्विकार अवस्था में पहुँचा देता है, वह संकल्प मात्र से दूसरों की विचार तरंगों को पकड़ सकता है। जिसका हृदय निर्विकार होता है, सम्प्रज्ञात योग से जिसका मन विचारों से रहित हो चुका है, वह संकल्प मात्र से हजार किलोमीटर दूर बैठे हुए किसी भी व्यक्ति के मन की बात को जान जाता है। इसको कहते हैं— दूसरों के मन की बात को जान जाना।

## सूझे चौदे भवन।

समाधि में बैठकर योगी चौदह लोक के दृश्यों को देख सकता है। यहाँ बैठे-बैठे योगी देख सकता है कि रूस के अमुक शहर की अमुक सड़क पर कौन सी गाड़ी

कितने नम्बर की जा रही है, जबकि शरीर उसका कहाँ है, हिन्दुस्तान में। कहाँ क्या हो रहा है? सब कुछ देख सकता है। सारे ब्रह्माण्ड के दृश्यों को देख सकता है। जैसे अभी मैंने कहा—

**नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्।**

**योग दर्शन ३/२९**

ब्रह्माण्ड में जो कुछ है, उसका सूक्ष्म रूप इस शरीर में है। जिस प्रकार नाभि चक्र में संयम करके सम्पूर्ण शरीर का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उसी तरह से शरीर में एक-एक बिन्दु पर ध्यान करके, एक-एक नाड़ी में ध्यान करके हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विषय में जान सकते हैं।

**भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।**

**योग दर्शन ३/२६**

सूर्य में संयम करके सारे ब्रह्माण्ड का दृश्य देखा जा

सकता है।

**मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।**

**योग दर्शन ३ / ३२**

प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्ट की भक्ति करता है। यदि कोई राम का भक्त है, और मूर्धा में उसने राम के चित्र का संकल्प किया, तथा राम का संयम (धारणा, ध्यान) करने लगा, तो राम का दर्शन कर सकता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उसने सर्वशक्तिमान, सकल गुण निधान, सच्चिदानन्द अक्षरातीत परमात्मा का दर्शन कर लिया है। हनुमान जी का दर्शन हो सकता है, भगवान शिव का दर्शन हो सकता है, योगेश्वर श्री कृष्ण का दर्शन हो सकता है। जितने ऋषि-मुनि, सिद्ध-महापुरुष हैं, मूर्धा में समाधिस्थ होने पर उनको प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, लेकिन ये परमात्मा नहीं हैं। यहाँ ही बड़े-बड़े योगी रुक जाते हैं, सोचते हैं कि हमने जीवन



के लक्ष्य को पा लिया। सिद्धि-विभूतियों में जो फँस जाते हैं, वे अध्यात्म के सच्चे पथ से भटके हुए माने जाते हैं।

## मृतक को जीवित करो, पर घर की न होवे गम।

मरे हुए को जिन्दा करने के लिए क्या करना पड़ता है? दो ही रास्ते हैं— या तो अपनी उम्र दीजिए, या अपने संकल्प बल से उस जीव को पुनः उस शरीर में प्रवेश कराइये। वैसे यह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है। ऐसा प्रायः योगी नहीं करते। कदाचित् कभी-कभी विशेष परिस्थितियों में उनको ऐसा करना पड़ जाता है। लेकिन यदि आप किसी मरे हुए को जिन्दा कर देंगे, तो दुनिया क्या मानेगी कि आप साक्षात् परमात्मा हैं। आप किसको-किसको जिन्दा करेंगे? एक को जिन्दा करेंगे, तो दूसरा कहेगा कि आपने उसको जिन्दा किया, आप

मेरे घरवाले को जिन्दा क्यों नहीं करेंगे ? आप उसको जिन्दा नहीं करेंगे, तो वह आपका वैरी बन जाएगा। यह माया का संसार है।

एक पुस्तक है "योगी की आत्मकथा", जो स्वामी योगानन्द जी ने लिखी है। स्वामी योगानन्द जी लाहिड़ी महाशय जी के शिष्य युक्तेश्वर जी के शिष्य थे, और लाहिड़ी महाशय जी के गुरु थे महावतार बाबा। महावतार बाबा के जीवन से जुड़ी हुई एक सच्ची घटना है। वे हिमालय में विचरण कर रहे थे। योगबल से वे आज भी युवावस्था में हैं। उनके पास एक व्यक्ति आकर बोला – "महाराज जी! मुझे दीक्षा दे दीजिए।" महावतार बाबा ने कहा – "नहीं! तू इसके योग्य नहीं है, मैं तुझे दीक्षा नहीं दूँगा।" उसने कहा – "महाराज जी! यदि आप मुझे अपना शिष्य नहीं बनायेंगे, तो मैं पहाड़ी से कूद जाऊँगा।" तो

उन्होंने भी कह दिया- "जा, कूद जा, मैं तुझे दीक्षा नहीं देता।" वह श्रद्धा से पूर्ण था। तुरन्त उसने पहाड़ी से छलांग लगा दी। शरीर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

महावतार बाबा ने शिष्यों से कहा- "यह तो पागल है, इसने तो अनर्थ कर दिया। जाकर इसकी सारी हड्डियाँ इकट्ठी कर लो और जैसी थीं वैसे ही सटा दो।" शिष्यों ने सारी हड्डियाँ सटा दीं। फिर महावतार बाबा ने कहा- "उठ खड़ा हो जा, क्यों सो रहा है।" और वह उठकर खड़ा हो गया और फिर दीक्षा दे दी। यह तो हिमालय की गुफाओं की गोपनीय बात है।

यदि जन-सामान्य में ऐसा कर दिया जाये, तो दुनिया कहेगी कि परमात्मा को तो हमने नहीं देखा, हमारे परमात्मा तो अब यही हैं। वह लाख समझाएँगे कि मैं परमात्मा का भक्त हूँ, मेरी भक्ति मत करो, उस

परमात्मा की भक्ति करो। दुनिया कहेगी कि नहीं, हमें परमात्मा से लेना-देना नहीं है, हमें तो आपसे लेना-देना है। हमारे घर में भी यदि कोई मर जाये, तो आप उसे दोबारा जिन्दा कर दीजिएगा। इसी स्वार्थ के लिए दुनिया पीछे लगेगी, न कि परमात्मा को जानने के लिए। परमात्मा बहुत कम लोगों को प्रिय होता है। दुनिया माया के अन्धकार में भटक गई है। श्री प्राणनाथ जी की वाणी में एक कीर्तन है—

**रे हो दुनियां बावरी, खोवत जनम गंवार।**

**मदमाती माया की छाकी, सुनत नाहीं पुकार॥**

यह भी एक प्रकार की माया है। हम अपने संकल्प-बल से प्रकृति की शक्तियों को वश में कर लेते हैं और उसको उल्टा करके दिखाते हैं। हम क्या कहते हैं कि

हमने चमत्कार दिखा दिया। उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के चमत्कार को देखिए। एक हवाई जहाज को चलाने के लिए कितने ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। परमात्मा के बनाये हुए ग्रह-नक्षत्र आकाश में आकर्षण शक्ति से अपने आप घूम रहे हैं, बिना किसी तेल के। यह कपड़े का टेन्ट लगा है। थम्भ हटा दीजिए, तो यह कपड़ा भी ठहरा हुआ नहीं रह सकता।

सूर्य को आकाश में किसने थामा है ? पृथ्वी को किसने थामा है? चन्द्रमा को किसने थामा है? आकाश में असंख्य नक्षत्र बिना किसी थम्भे के घूम रहे हैं। हम तो कपड़े का एक टेन्ट भी खड़ा नहीं कर सकते। इससे बड़ा चमत्कार और क्या होगा?

असंख्य प्राणी, असंख्य वनस्पतियाँ, असंख्य प्रकार के रूप-रंग सर्वशक्तिमान की सत्ता में क्रियाशील

हैं। हम उसकी सत्ता को चुनौती देकर, थोड़े से चमत्कार दिखाकर, गौरवान्वित हो जाते हैं कि देखो भाई! मैं तो आकाश में उड़ लेता हूँ, मैं तो मुर्दे को जिन्दा कर सकता हूँ, मैं तो तुम्हारे मन की बात जान सकता हूँ। यह कौन सी बड़ी उपलब्धि है?

एक बार स्वामी रामतीर्थ हरिद्वार की तरफ घूम रहे थे, ऋषिकेश की पहाड़ियों में। उन्हें नदी के उस पार जाना था। एक महात्मा मिले। उन्होंने देखा कि रामतीर्थ जी नौका में जाने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। महात्मा जी रामतीर्थ जी को जानते थे, कहने लगे— "रामतीर्थ! मैंने तो तुम्हारी बहुत प्रसिद्धि सुनी थी। तुम वेदान्त के इतने बड़े विद्वान हो और नौका में जाने के लिए बाट देख रहे हो। क्या तुम खड़ाऊँ पहनकर ऐसे ही गंगा जी को पार नहीं कर सकते। देखो, मैं तो खड़ाऊँ पहनकर इस गंगा

को पार कर जाता हूँ।"

स्वामी रामतीर्थ हँसने लगे, बोले— "महात्मा जी! इस स्थिति को पाने के लिए आपको कितने वर्ष साधना करनी पड़ी थी?" उन्होंने कहा— "बारह वर्ष।" स्वामी रामतीर्थ बोले— "इससे अच्छा तो मैं हूँ और आपसे अच्छा तो यह साधारण गृहस्थ आदमी है, जो खेती करता है, व्यवसाय करता है, पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करता है। दो पैसे नाव वाले को देगा और नाव में बैठकर गंगा को पार कर लेगा। आपकी बारह साल की तपस्या का मूल्य केवल दो पैसे है, क्योंकि आप इससे दुनिया की नदी तो पार कर सकते हैं, लेकिन भवसागर को पार नहीं कर सकते।" महात्मा का सिर नीचा हो गया। लेकिन जब दुनिया देखेगी कि महात्मा जी खड़ाऊँ पहनकर नदी पार कर रहे हैं, तो क्या सोचेगी

कि कितने सिद्ध महापुरुष हैं। उपनिषद् कहते हैं—

श्रवणाय अपि बहुभिर्यो न लभ्यो, शृण्वन्तो अपि बहवो य न विदुः।

### कठोपनिषद् द्वितीय वल्ली श्लोक ७

पहले तो यह ब्रह्मज्ञान सुनने को नहीं मिलता। सुनते हुये भी इसको बहुत नहीं जानते। इसको कहने वाला और सुनने वाला कोई दुर्लभ ही होता है। अभी भागवत की कथा हो जाये, रास-विलास से सम्बन्धित कुछ भजन प्रदर्शित किये जायें, दो-चार लोग खड़े होकर नाचने लग जायें, तो सारी भीड़ खड़ी होकर नाचने लगेगी और यहाँ बैठने की भी जगह नहीं मिलेगी। लेकिन यह पता नहीं कि परमात्मा कौन है? परमात्मा कहाँ है? परमात्मा कैसा है? यह सुनने वालों की संख्या बहुत कम है क्योंकि यह संसार बहिर्मुखी है। कोई विरला ही होता



है, जो अन्तः में प्रवेश करना चाहता है और अपने स्वरूप को जानना चाहता है।

अपनी १८ वर्ष की आयु में जिनसे मैंने योग विद्या सीखी थी, उन्होंने एक बालक की सच्ची घटना बताई। उस बालक ने उन स्वामी जी से योग की प्राथमिक कक्षा सीख ली थी, नासिका के अग्र भाग पर देखना। देखते-देखते उसके मन में एकाग्रता प्राप्त हो गई और उसको सिद्धि मिल गई। वह भविष्य की सारी बातें बताने लगा। अब वह योगिराज के नाम से प्रसिद्ध हो गया कि यह योगिराज सारी बात बता देते हैं। जनता इतनी इकट्ठी होने लगी कि फुटकर रुपये गिनने वाला कोई नहीं मिलता था। लाखों रुपये बरसने लगे। उसके नाम से बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनने लगीं। कुछ दिनों के पश्चात् वह अपने गुरुदेव से मिला। उसने गुरुदेव को प्रणाम

किया, तो उन्होंने पूछा, कौन? वह बोला, गुरुदेव! मैं आपका वही शिष्य हूँ, आप मुझे नहीं पहचानते हैं?

फिर उसने अपनी दर्द भरी कहानी सुनायी – "मेरी सिद्धि के कारण लाखों लोग मेरे पास आये। उन्होंने बहुत सारा चढ़ावा चढ़ाया, लेकिन मुझे गाँजा पीने की बुरी लत लग गई। जब मैं गाँजा पीने लगा, तो मैंने साधना छोड़ दी, और साधना छोड़ने से मेरी सिद्धि चली गई। जब मैंने भविष्य की बातें बताना बन्द कर दिया, तो मेरे पास चढ़ावा आना भी बन्द हो गया। फलतः पहले मेरे पास लाखों रुपये रहते थे, किन्तु अब मुझे कोई भिक्षा भी देना पसन्द नहीं करता। यह मेरी कहानी है।" यह माया का संसार है। इसलिए सिद्धि-विभूतियों को कभी भी अन्तिम लक्ष्य नहीं समझना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने अहंकार का परित्याग करे।

## समाधिसिद्धि: ईश्वर प्रणिधानात्। योग दर्शन २/४५

समाधि में सफलता तभी प्राप्त हो सकती है , जब परमात्मा पर सर्वस्व समर्पण कर दिया जाये। क्रिया योग का प्रचलन काफी चलता रहा है, आज भी है। चाहे लाहिड़ी महाशय हों, चाहे महावतार बाबा हों, सभी इसी क्रिया योग के अनुयायी कहे जा सकते हैं।

### तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान क्रियायोगः।

यह क्रियायोग है। "तप" अर्थात् मन को इन्द्रियों के विषयों में न जाने देना ही वास्तविक तप है। "स्वाध्याय" अर्थात् धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय और आत्म-चिन्तन ही जीवन को उत्कृष्ट मार्ग पर ले जाता है। जिन्होंने समर्पण की भाषा सीख ली कि हे परमात्मा, केवल तू है, मेरा कुछ भी नहीं है। मैं के आस्तित्व को जिसने हटा दिया,

उसने समाधि के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। यही मैं सबसे बड़ा बन्धन है। ज्ञानी को अपने ज्ञान की "मैं", तपस्वी को अपने तप की "मैं", तथा योगी को अपने योग की "मैं" खा जाती है। जो शरीर के बन्धनों से परे हो गया कि मेरा यह शरीर है ही नहीं, न मैं हूँ और न मेरा कुछ है। जिसने इस तथ्य को आत्मसात् कर लिया, वही व्यक्ति समाधि का अधिकारी होता है और वही उस परमतत्त्व तक पहुँच पाता है।

समाधि कई तरह की होती है। योग दर्शन में भी दो तरह की समाधि बताई गई है – सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

सम्प्रज्ञात के चार भेद होते हैं— विचार, वितर्क, आनन्द, और अस्मिता। आप समाधि लगाते हैं। ऊँची—ऊँची समाधियाँ लगाकर यदि आप अस्मिता तक भी

पहुँचते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि आपने परमात्मा को पा लिया। हर समाधि के दो-दो भेद हैं—सविचार और निर्विचार। इसी क्रम में वितर्क आदि को भी समझना चाहिए। सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि भी कहते हैं, जिसमें प्रकृति का अंश आपके साथ जुड़ा रहेगा। यहाँ से शुरु होती है— शून्यवाद की साधना। आप समाधि में होते-होते शून्य स्वरूप हो गये।

जो विपश्यना योग की प्रक्रिया है, वह आपको शून्यवाद तक ले जाएगी। विपश्यना में क्या होता है? इसका वास्तविक अर्थ है, विशेष ज्ञान दृष्टि से देखना, मैं कौन हूँ? स्वांशों के सहारे यह साधना की जाती है। मन को विचारों से शून्य किया जाता है, फिर शून्य समाधि में चेतना स्थित हो जाती है। योग का परम लक्ष्य यही मान लिया जाता है, लेकिन यह भी भूल है।

सम्प्रज्ञात समाधि (सबीज समाधि) से जो संस्कार पैदा होते हैं, उससे ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। "ऋतम्भरा" यानी यथार्थ सत्य को ग्रहण करने वाली बुद्धि। जब तक हमारे अन्दर रजोगुण और तमोगुण का संस्कार है, तब तक हमारे हृदय में शुद्ध ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सकता। शुद्ध-सात्विक बुद्धि जो यथार्थ सत्य को ग्रहण कर सकती है, वह ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है, जो समाधि से प्राप्त होती है और इससे जो संस्कार प्राप्त होते हैं, उन्हें कहते हैं प्रसंख्यान, अर्थात् स्वयं को शरीर और संसार से पृथक् अनुभव करना। इससे भी आगे गहराई में जब आप जायेंगे, तो एक अवस्था प्राप्त होगी वैराग्य की। किन्तु यह सब मिथ्यामयी है, यह संसार कुछ भी नहीं है, और उस अवस्था में आपकी चेतना प्रकृति को अपने से अलग रूप में देखती है।

मैंने कल कहा था कि आकाश का भी रूप है, अहंकार का भी रूप है, महत्तत्त्व का भी रूप है, प्रकृति का भी रूप है, लेकिन ये आँखों से दिखाई नहीं दे सकते। योगी समाधि अवस्था में इन तत्त्वों का साक्षात्कार करता है। वह मन को देखता है, चित्त को देखता है, बुद्धि को देखता है। बुद्धि भी प्रकाशमयी दिखाई देगी। तमोगुणी बुद्धि कालिमा से भरी हुई दिखाई देगी, रजोगुणी बुद्धि लालिमा से भरी हुई दिखाई देगी, शुद्ध सात्विक बुद्धि चमकते हुये तारे की तरह दिखाई देगी। बुद्धि एक द्रव्य है, मन एक द्रव्य है। समाधि अवस्था में इनका दर्शन होता है। जिन्होंने इन गहन रहस्यों को नहीं समझा, जब उन्हें प्रकाश दिखाई दिया, तो समझ लिया की हमने तो परमात्मा को देख लिया है। यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है।

दशवें द्वार में जीव का प्रकाश दिखाई देता है। सोलह सूर्यों के तेज के बराबर यदि तेज दिखाई देता है, तो यह न समझ लीजिए कि हमने परमात्मा को देख लिया है, क्योंकि यह तो जीव का प्रकाश है। उस सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द परमात्मा का स्वरूप तो अनन्त तेज वाला है।

उस सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द परमात्मा को पाने के लिए विहंगम योग की प्रक्रिया अपनाई जाती है। कर्मकाण्ड के जो भी साधन हैं, चाहे आप माला का जप कीजिए, पूजा-पाठ कीजिए, हवन कीजिए, यह सब कुछ मन और इन्द्रियों द्वारा होने वाले हैं। ध्यान की प्रक्रिया में अलग-अलग प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। शून्य समाधि वास्तविक समाधि नहीं है , क्योंकि यह जड़ समाधि है।



राजा रणजीत सिंह के जमाने में एक हठयोगी थे। उन्होंने जमीन में गड्ढा खुदवाया और अपने शरीर को बक्से में बन्द कर दिया। दशवें द्वार में अपनी प्राणवायु को चढ़ा दिया। उस अवस्था में दशवें द्वार में प्राण – अपान स्थित हो जाते हैं, तो शरीर की सारी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। न भूख लगेगी, न प्यास लगेगी, न श्वाँस लेंगे, न श्वाँस छोड़ेंगे। और उन्होंने अपने को उस बक्से में बन्द करवाकर मिट्टी से ढकवा दिया। ऊपर चने की खेती करवा दी, और रणजीत सिंह से कह दिया कि जब चने की फसल कट जाये तब खोदकर मुझे निकालकर मेरे शरीर की मालिश करवा देना, मैं फिर चेतन अवस्था में आ जाऊँगा। ऐसा ही किया गया। चने की फसल काटी गई और उस योगी को निकाला गया। चारों तरफ जय-जयकार हुई कि ये कितने महान योगी हैं।

तीन महीने गड्डे के अन्दर बन्द रह गये। न खाया, न पीया, न ही श्वाँस ली। दुनिया ने क्या समझा कि योगेश्वर ने परमात्मा का दर्शन जरूर किया होगा। लेकिन ब्रजोली क्रिया सिद्ध करने के लिए, कुछ दिनों के बाद, किसी कुँवारी कन्या पर उनकी बुरी दृष्टि हो गई और उसका अपहरण करके ले गये, चारों तरफ गन्दा मुँह हो गया। यानी तीन महीने जमीन के अन्दर जड़ समाधि लगाने पर भी उनको बुद्धत्व प्राप्त नहीं हुआ, ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ कि मैं कर क्या रहा हूँ? इसका तात्पर्य क्या है? जड़ समाधि वैसे ही है जैसे आप निद्रा में सो जाते हैं। सामान्य जनता तो समझेगी कि देखो ये ५ दिन से समाधि में हैं और कुछ खाया-पिया भी नहीं है, नित्य क्रिया भी नहीं की है। इनसे बड़ा योगिराज कौन होगा? लेकिन इससे मिलने वाला कुछ नहीं है।

आगम भाखो मन की परखो, सूझे चौदे भवन।

मृतक की जीवित करो, पर घर की न होवे गम॥

किरंतन १४/१०

भले ही कोई भविष्य की तथा दूसरों के मन की सारी बातें जान जाये, सारे ब्रह्माण्ड का ज्ञान रखने लगे, एवं मरे हुए को भी जीवित करने लगे, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसे यह पहचान हो गयी हो कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? इस शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् मुझे जाना कहाँ है?

योग दर्शन में परमात्मा के साक्षात्कार का कहीं पर कोई सूत्र नहीं है। यह कहा गया है कि जब निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है, तो चित्त के सारे संस्कार दग्ध हो जाते हैं। जैसे चना लीजिए और उसे गरम बालू में भुन

दीजिए, तत्पश्चात् उसको मिट्टी में दबा दीजिए, तो क्या अँकुर निकलेगा? कभी नहीं, क्योंकि उसमें चेतना नहीं रह गई है। वैसे ही चित्त के संस्कारों के कारण ही जीव का पुनर्जन्म होता है। चित्त में जन्म-जन्मातरों की जो वासना है, वही वासना उस जीव को दूसरी योनि में प्रवेश करने के लिए मजबूर करती है।

जैसे किसी मनुष्य में माँस खाने की तृष्णा है और मरने पर भी यदि वह तृष्णा बनी रही, तो वह तृष्णा उसको शेर, गीदड़, या किसी न किसी माँसाहारी प्राणी की योनि में ले जायेगी, जहाँ से वह अपनी वासना की तृप्ति कर सके। लेकिन यदि चित्त में संस्कार ही नहीं हैं, भोग के सारे संस्कार समाप्त हो गये हैं, तो परिणाम क्या होगा? उसका जन्म नहीं हो पायेगा।

योग दर्शन यहाँ तक ले जाता है। आपको प्रकृति से

परे कर देगा। यानि निर्बीज समाधि में आपको उस मन्जिल पर ले जाएगी, जहाँ पर स्वर्ग के सुख हों, एक या दो नहीं अपितु करोड़ों-अरबों स्वर्ग के सुख हों, वैकुण्ठ के सुख हों, फिर भी आपका मोह उसमें नहीं होगा। आपकी आसक्ति उन सुखों में नहीं रहेगी। इसको कहते हैं कैवल्य अवस्था, यानी प्रकृति से परे की वह अवस्था जिसमें चेतना को कभी कोई भी भोग की आसक्ति मोहित नहीं कर सकती। यह परमात्मा दर्शन की अवस्था नहीं है। आपने चित्त को निर्विकार तो कर लिया। जब तक महाप्रलय नहीं होगा, तब तक आपका पुनर्जन्म नहीं होगा। आप ब्रह्माण्ड में इच्छानुसार विचरण कर सकते हैं, लेकिन परमात्मा का दर्शन यह भी नहीं हुआ।

**गुहां प्रविष्टौ आत्मनौ हि तत् दर्शनात्।**

## वेदान्त दर्शन १/२/११

परमगुहा में उस ब्रह्म का दर्शन होता है।

वेनः तत् पश्यत् परमं गुहां यद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत।

अथर्ववेद २/१/१,२

उस परमगुहा में उस अविनाशी ब्रह्म का दर्शन होता है, जिसकी कृपा-अमृत का रसपान उस चेतना को करने के लिए मिलता है। कैवल्य में यह अनुभव होता है कि मैं हूँ। कैवल्य की अवस्था में जब आप पहुँच जायेंगे, तो यह भान रहेगा कि मैं हूँ, लेकिन जब तक यह "मैं" नहीं मिटेगी, तब तक आपको परमात्मा के दर्शन का अधिकार भी नहीं मिल सकता। एक बीज से अँकुर तब तक नहीं निकलता है, जब तक उसको मिट्टी में न मिला

दिया जाये। कोई भी बीज यदि पृथ्वी के ऊपर रहेगा, तो सूख जायेगा। वैसे ही कोई कितना ही बड़ा योगी हो, कितना ही बड़ा तपस्वी हो, जब तक उसके अन्दर से अहम् समाप्त नहीं होगा, तब तक उसे परमात्मा के दर्शन का अधिकार प्राप्त नहीं होगा और वह एकादश द्वार में प्रवेश नहीं कर पायेगा।

सन्त मत में एक बहुत अच्छी बात कही जाती है। सन्त कबीर जी ने एक दोहे में सारा योग दर्शन लिख दिया। उसी तरह से वेद ने एक मन्त्र में सारा योग दर्शन लिख दिया। लेकिन यह तत्त्वज्ञान मनीषियों ने छिपाए रखा कि जो पात्र हो उसी को यह दिया जाये। कुपात्र व्यक्ति इसका दुरुपयोग कर सकता है। कबीर जी ने क्या कहा है—

नव द्वारा संसार का, दसवा योगी तार।

एकादश खिड़की खुली, अग्र महल सुख सार।।

इसमें सारा योग दर्शन आ गया। संसार में शरीर में नौ द्वार हैं। दसवें द्वार तक योगी की पहुँच होती है। योगी जानता है कि मेरा दसवाँ द्वार क्या है? सामान्य प्राणी नहीं जानता। लेकिन यदि वह एकादश द्वार में पहुँच गया, तो उसको ब्रह्म का दर्शन हो जाएगा। यह एकादश द्वार क्या है? इसको कहते हैं परमगुहा। इस अवस्था में प्रकृति का कोई भी नामोनिशान नहीं होता।

दसवें द्वार में समाधिस्थ होने वाला योगी अपनी सुषुम्ना को प्रवाहित करके त्रिकालदर्शी हो सकता है। वह शरीर से बाहर निकलकर ब्रह्माण्ड में एक मिनट में अमेरिका जैसे कितने देशों में जा सकता है और वापस



आकर शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाएगा। सूक्ष्म शरीर से सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर सकता है। किसी भी नक्षत्र पर जा सकता है। दुनिया में योगिराज बनकर पूजा जा सकता है। सब कुछ हो सकता है, लेकिन ब्रह्म का दर्शन तब भी प्राप्त नहीं होगा, और गहराई में पहुँचता है तो कैवल्य की अवस्था में पहुँच जाएगा। वह निर्विकार बना रहेगा। महाप्रलय तक उसका जन्म नहीं होगा। वह योगेश्वर के रूप में सारे ब्रह्माण्ड में भ्रमण करता रहेगा, लेकिन प्रकृति से परे वह नहीं जा पायेगा। वेद ने कहा है—

पृष्ठात् पृथिव्या अहम् अन्तरिक्षम् आरूहम् अन्तरिक्षात् दिवं आरूहम्।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वः ज्योतिर्गाम् अहम्॥

अथर्ववेद ४/१४/३

मैं पृथ्वी से अन्तरिक्ष को जाऊँ , अन्तरिक्ष से  
 द्युलोक को जाऊँ, और द्युलोक से मैं उस आनन्दमयी  
 ज्योति को प्राप्त हो जाऊँ। इसमें सारा रहस्य दे दिया है।  
 यह द्युलोक क्या है? दसवाँ द्वार ही द्युलोक है, और  
 इससे परे है एकादश द्वार जिसको कठोपनिषद् में सीधे  
 शब्दों में कहा है—

**पूरम् एकादश द्वारम् अजस्यावक्र चेतसः।**

**अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥**

**कठोपनिषद् पंचमी वल्ली श्लोक १**

जिसको सन्त वाणी में एकादश द्वार कहा गया है,  
 उपनिषद् में भी उसको एकादश द्वार कहा है। लेकिन इस  
 रहस्य को जानने वाले कोई विरले होते हैं, जिन पर  
 सच्चिदानन्द परमात्मा की कृपा होती है, केवल वे ही

समझ पाते हैं। शेष संसार अज्ञानतापूर्ण सिद्धियों के प्रदर्शन में ही लग जाते हैं। कितने जन्म सिद्धियों को प्राप्त करके संसार को वशीभूत करने में लग जाते हैं, पर वैराग्य प्राप्त नहीं होता। किन्तु वैराग्य क्या है ? सारा संसार हमारे चरणों में आ जाये, फिर भी हमें अभिमान न हो कि मैं कितना बड़ा योगी हूँ।

आप किसी योगी, महात्मा के पास जाइये। आप उसे केवल प्रणाम न कीजिए, फिर देखिए क्या होगा? उनको बुरा लगेगा कि तुमने मुझे प्रणाम नहीं किया। तुझे मालूम नहीं कि मैं कितना बड़ा महात्मा हूँ? आप किसी ब्रह्मज्ञानी के पास जाइये। आप दस गालियाँ दीजिए, उसको दुःख नहीं होगा। आप उसके चरणों में लेट जाइए, उसको तब भी खुशी नहीं होगी कि यह मेरे चरणों में साष्टांग लेटा है, क्योंकि वह तो आत्मदर्शी है। वह देख

रहा है कि यह तो चेतना है।

बुद्ध के पूर्व जन्म की एक कहानी है। बुद्ध जिस जन्म में थे, उसके एक हजार पूर्व के उनके जन्म की कहानी है। बुद्ध के उस जन्म में वहाँ एक योगेश्वर आये थे। जनता उनके स्वागत के लिए खड़ी थी। पंक्तिबद्ध होकर सारे लोग खड़े थे। उनके आते ही एक-एक व्यक्ति ने उनके चरणों में शीश झुकाया। बुद्ध ने भी उस महान योगिराज के चरणों में शिर झुकाया, लेकिन जब उस महान योगिराज की नजर बुद्ध के चेहरे पर पड़ी, तो वे योगिराज बुद्ध के चरणों में लेट गये। बुद्ध हड़बड़ा गये कि महाराज, मैंने तो अपने कल्याणार्थ आपके चरणों में शीश झुकाया था। आप मेरे चरणों में क्यों लेट रहे हैं ? वह योगिराज बोले कि देखो इस समय मैं बुद्ध हूँ, लेकिन मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि अब से हजार जन्मों के बाद

तुम भी इसी अवस्था को प्राप्त होने वाले हो। उस समय के लिए मैं तुम्हारे चरणों में नतमस्तक हो रहा हूँ। यह सब कुछ दिख जाता है, लेकिन यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। अन्तिम लक्ष्य है आत्म दृष्टि से उस परमात्मा को देखना। कबीर जी ने क्या कह दिया—

**तन थिर मन थिर पवन थिर, सुरति निरति थिर होए।**

**कहें कबीर ता पलक की, कल्प न पावे कोए॥**

पल भर के लिए तन थिर अर्थात् शरीर स्थिर हो जाये। मन थिर अर्थात् मन स्थिर हो जाये। पवन थिर अर्थात् प्राण स्थिर हो जाये। सुरति और निरति भी स्थिर हो जाये। सुरति क्या है? अन्दर की चेतना की जो चित्तवृत्ति है, चेतना की जो चिद्शक्ति है, वह सुरति कहलाती है। वह ब्रह्माण्ड में सर्वत्र भ्रमण करती है।

राधा स्वामी, सच्चा सौदा, धन-धन सतगुरु आदि के मतों में ब्रह्माण्डीय शब्दों की साधना कराई जाती है। दोनों भौंहों के बीच में ध्यान करने से निरञ्जन शब्द की अनुभूति होती है। उसके ऊपर त्रिकुटी में ध्यान करेंगे, जहाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियाँ मिली हैं, वहाँ ॐ शब्द की अनुभूति होती है। उसके ऊपर जायेंगे, तो "सोऽहम्" शब्द की अनुभूति होती है, वह भी भ्रमर गुफा में। उसके पश्चात् आगे जायेंगे, तो "शक्ति" शब्द का अनुभव होगा, और दशवें द्वार में "ररं" शब्द का अनुभव होगा। दसवें द्वार में जाकर अधिकतर लोग रुक जाते हैं।

हजारों में कोई विरला होता है, जो दसवें द्वार के आगे गमन करेगा, सुषुम्ना प्रवाह से आगे बढ़ेगा, अपने अहंकार की समाप्ति करके समाधि अवस्था को प्राप्त होगा। परम गुहा (एकादश द्वार) में प्रवेश करेगा और

अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति का दर्शन करेगा। यह साधना करने वाला लाखों में कोई एक होता है।

आप हिन्दू समाज की स्थिति देखिए। हिन्दू समाज में लगभग अस्सी करोड़ की संख्या होगी, दूसरे पन्थों को छोड़कर। अस्सी करोड़ में से चालीस करोड़ लोग, मेरे अनुसार, देवी-देवताओं की, जड़ पदार्थों की पूजा करने वाले हैं। शेष चालीस करोड़ में केवल बीस करोड़ ध्यान करने वाले होंगे। और शेष बचे बीस करोड़ शायद नास्तिक हों। जो बीस करोड़ ध्यान करने वाले हैं, उनमें से उन्नीस करोड़ पन्चानवे लाख लोग शून्यवाद की साधना और सिद्धि-विभूतियों से जुड़े होंगे। सिर्फ पाँच लाख लोगों को पता होगा कि यदि इस निराकार-शून्य मण्डल से परे जायेंगे, तो ब्रह्म का दर्शन होगा। पाँच लाख में यदि ५० भी उसके परे जाते हैं, तो समझ लेना चाहिए

कि बहुत अच्छी स्थिति है।

वैसे तो भक्तों की मण्डली बहुत देखने को मिलेगी। कुम्भ में चले जाइये, तो लगेगा कि सारी दुनिया कितनी भक्त है परमात्मा की। उसका ध्येय होगा, पानी में डुबकी लगाओ और मुक्ति पा जाओ। लेकिन ध्यान रहे, ज्ञान की गंगा में स्नान किये बिना कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती— "ऋते ज्ञानात् न मुक्ति"।

लेकिन यह साधना की जो प्रक्रिया है, अक्षरातीत के दर्शन की प्रक्रिया नहीं है। यह अक्षर ब्रह्म के चतुष्पाद विभूति के दर्शन की प्रक्रिया है। इससे अव्याकृत का साक्षात्कार होगा, सबलिक का साक्षात्कार होगा, केवल का साक्षात्कार हो सकता है, और सत्स्वरूप का भी साक्षात्कार हो सकता है। अक्षर की पञ्चवासनायें— कबीर जी, सनकादिक, विष्णु भगवान, शँकर जी, शुकदेव



जी- ने इस प्रक्रिया को अपनाकर प्रकृति से अपने को परे किया और अक्षर की चतुष्पाद विभूति का साक्षात्कार किया। ये इस ब्रह्माण्ड के पञ्चरत्न हैं। लेकिन वह सच्चिदानन्द परमात्मा, जिसको अक्षरातीत कहते हैं, जिसको उपनिषदों में कहा-

**अप्राणो ह्यमानो शुभ्रो हि अक्षरात् परतः परः।**

**मुण्डकोपनिषद् १/२/४**

उस अक्षरातीत के साक्षात्कार के लिए प्रेम का मार्ग अपनाना पड़ेगा।

शुकदेव जी राजा जनक के दरबार में पहुँचते हैं। जनक को देखा कि वे सिंहासन पर बैठकर नृत्य देख रहे हैं। शुकदेव जी के मन में आया कि जो नृत्य-गान के आनन्द में मस्त है, वह मुझे क्या ब्रह्मज्ञान देगा? जनक

समझ गये। उन्होंने योग-ऐश्वर्य से अपने महल में अग्नि प्रकट कर दी, जिससे सब कुछ जलने लगा। यह देखकर शुकदेव जी भागे कि मैं तो अपना कमण्डल छोड़ आया हूँ। जनक हँसने लगे कि शुकदेव! मेरा महल जल रहा है और मैं सिंहासन पर बैठा हूँ, किन्तु तुम तो विरक्त हो। एक कटू के कमण्डल के लिए इतना मोह है कि तुम भागे जा रहे हो। यह तो देखो कि मैं क्यों नहीं भाग रहा हूँ? मैं यहीं बैठा हूँ।

शुकदेव जी इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी थे, फिर भी उनको यह बोध तो है कि यह मेरा शरीर है। जनक का शरीर अग्नि में है, लेकिन उनको कोई बोध नहीं कि मैं अग्नि में जल रहा हूँ। वे शरीर के भाव से परे हैं, संसार के भाव से परे हैं। सिंहासन पर बैठे हैं, लेकिन उनके अन्दर यह भाव नहीं है कि मैं सिंहासन पर बैठा हूँ। उनको लगता है

कि यह सब झूठा है। यह मेरा राज-पाट झूठा है। मेरा शरीर झूठा है। उस अवस्था में जनक पहुँच गये हैं। लेकिन यह अहम् ही है, जिसको बड़ा से बड़ा तपस्वी मार नहीं पाता, केवल प्रेम द्वारा ही इसको समाप्त किया जा सकता है। योगेश्वर श्री कृष्ण गीता में कहते हैं—

**पुरुषः सः पर पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्या।**

**गीता ८/२२**

हे अर्जुन! उस परमात्मा को अनन्य परा प्रेम द्वारा पाया जाता है।

प्रेम और परा प्रेम में अन्तर है। क्या है प्रेम? क्या सांसारिक आसक्ति को प्रेम कहते हैं? वह कौन-सी प्रक्रिया है, कहाँ पर है वह स्थान जहाँ परमात्मा का दर्शन होता है? जब हम योग की प्रक्रिया पर चलते हैं

और जब तक हमें पता नहीं होता कि परमात्मा कहाँ है, तब तक हमारी सारी उपासना पद्धति निरर्थक हो जाती है। जैसे, आम का पेड़ फलों से लदा हुआ है। आप एक टोकरा पत्थर इकट्ठा कर लें। आँखों पर पट्टी बाँधकर उस पर पत्थर मारते रहें, क्या होगा? कितने फल गिरेंगे? जब सारे पत्थर खत्म हो जायें, हम अपनी आँखों से पट्टी खोलें, तो दिखाई देगा कि एक भी आम का फल नहीं गिरा, क्योंकि हमारा निशाना ही चूक रहा था।

हमारे घर के आगे तुलसी का पौधा है। हम आँखें बन्द करके समाधि लगाते रहें। हे तुलसी के पौधे, तेरे अन्दर से सच्चिदानन्द परमात्मा प्रकट होना चाहिए। ध्यान में तुलसी के पौधे को देख रहे हैं, तो क्या दिखेगा? हम परमात्मा को नहीं देख सकते। हमने घर के आगे एक सीमेन्ट का चबूतरा बना दिया और ध्यान में

बैठकर देख रहे हैं कि यह चबूतरा परमात्मा का स्वरूप है, इससे परमात्मा निकलेगा? इस प्रकार ध्यान में चबूतरा ही नजर आयेगा, परमात्मा नहीं।

वेदान्त का कथन है कि किसी अनात्म वस्तु पर धारणा नहीं करनी चाहिए। जड़ का ध्यान करने से बुद्धि में जड़ता के लक्षण आने लगते हैं। वैसे चेतन जीव के संयोग से बुद्धि चेतन ही रहती है, लेकिन जड़त्व का दोष आने लगता है। इसलिए वेदान्त का कथन है कि धारणा, ध्यान केवल परमात्मा का ही करना चाहिए और जब तक आपको पता ही नहीं है कि परमात्मा कहाँ है, तब तक की गई सारी धारणा, ध्यान, समाधि निष्फल हो जाती है। बड़े-बड़े योगेश्वरों को देखा जाता है कि वे सारी जिन्दगी सिद्धियाँ बटोरने में लगे रहते हैं। आकाश में उड़ने लगे, मुर्दे को जिन्दा करने लगे, त्रिकालदर्शी हो

गये, कहाँ से कहाँ की बात जानने लगे, इसी में सारी उम्र गुजर जाया करती है। एक जन्म में साक्षात्कार नहीं हुआ, तो फिर दूसरे जन्म में प्रवेश कर जाते हैं। इन्हीं को गीता में कहा है—

**अनेक जन्म संसिद्धिः ततो याति परां गतिम्।**

**गीता ७/४५**

अनेक जन्मों में साधना करता हुआ, कोई विरला ही उस परमात्मा को प्राप्त कर पाता है और वह भी किसको प्राप्त करता है? अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति को, अक्षरातीत को नहीं।

शुकदेव जैसा निर्विकार तो सृष्टि में कोई भी नहीं है। शंकर जी जैसा योगिराज कौन होगा, जो संसार को ठोकर मारकर दिन-रात समाधि में बैठे रहे। माहेश्वर तन्त्र

में भगवान शिव कहते हैं कि हे उमा ! परमात्मा कौन है, इसको जानने के लिए मैंने पाँच हजार दिव्य वर्षों की समाधि लगाई। उस समाधि में मैंने ईश्वर से जो ज्ञान सुना, वही ज्ञान मैं तुमको सुना रहा हूँ, और मैं उसी परमात्मा का ध्यान करने का प्रयास करता हूँ। आप कल्पना कीजिए उस अक्षरातीत की ज्ञान धारा को भगवान शिव समाधि में सुनकर ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं। वह दावे से नहीं कहते कि उन्होंने अक्षरातीत का दर्शन कर लिया। उनसे बड़ा योगिराज तो इस समय कलियुग में कोई होगा नहीं।

सनकादिक को लीजिए। पाँच साल की उम्र में चारों भाई— सनक, सनंदन, सनत्कुमार, सनातन— परमात्मा को जानने के लिए निकल पड़े हैं। शुकदेव और सनकादिक को यह पता नहीं है कि पुरुष किसको कहते

हैं और स्त्री किसको कहते हैं। वह चेतना को देख रहे हैं। इतनी ऊँची अवस्था में पहुँचने के बाद भी इनका ध्यान अव्याकृत, सबलिक, केवल, सत्स्वरूप से आगे अक्षर और अक्षरातीत तक नहीं पहुँच सकता, क्योंकि उसके लिए प्रेम चाहिए।

**प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धार पे धावन है।**

तलवार की धार पर दौड़ना सरल हो सकता है, किन्तु प्रेम की राह पर चलना कठिन है। प्रेम क्या है? प्रेम में "मैं" नहीं, "तू" होता है। भक्ति करने वाला यह सोचता है कि मैं भक्ति कर रहा हूँ या कर रही हूँ। साधना करने वाला सोचता है कि मैं परमात्मा का ध्यान कर रहा हूँ। प्रेम में "मैं" होता ही नहीं है। ऋग्वेद का एक मन्त्र कहता है—



यदग्रे स्याम अहं त्वं त्वं वा घा स्यामहम् स्युस्ते सत्या इहाशिषः।

ऋग्वेद ८/४५/२३

हे परमात्मा! जो तू है वह मैं हो जाऊँ और जो मैं हूँ वह तू हो जाये। इस बात को संसार का कोई भी भक्त या कोई भी योगी स्वीकार नहीं करेगा। जो तू है वह मैं हो जाऊँ, यह कैसे सम्भव है? यह सिर्फ प्रेम में कहा जा सकता है, साधना में नहीं, भक्ति में नहीं। क्या कोई कहेगा, हे भगवान! तू मेरी जगह नीचे आकर बैठ जा और मैं तेरी जगह सिंहासन पर बैठ जाऊँ। किसी भी कीमत पर नहीं कहेगा।

एक बार भगवान श्री कृष्ण के पेट में बहुत दर्द होने लगा और उन्होंने कहा कि यह दर्द तभी मिटेगा जब कोई अपने चरणों की धूलि देगा। रूक्मणी से कहा गया तो वह

बोली, मैं नरक में जाऊँगी यदि मैं अपने पति को अपनी चरण धूलि दूँगी। श्री कृष्ण भगवान तड़पते रहे, लेकिन किसी ने भी उन्हें अपने चरणों की धूलि नहीं दी। नारद जी चारों तरफ खोजते-खोजते थक गये। तब अन्त में श्री कृष्ण ने नारद से कहा कि तुम ब्रज में जाओ, और राधा व गोपियों से कहना कि कन्हैया के पेट में दर्द हो रहा है, और यह तभी ठीक होगा जब कोई अपने चरणों की धूलि देगा। राधा ने कहा कितनी चाहिए? एक पैर की या दोनों पैरों की, और धूलि दे दी।

नारद जी सिर पकड़कर बैठ गये कि मैं सोच रह था कि मैं अपने भगवान को यदि अपने चरणों की धूलि दे दूँ, तो कितना बड़ा पाप लग जाएगा। ये गोपियाँ तो पागल हैं, जो देने के लिये उतावली हो रही हैं। क्योंकि जहाँ प्रेम होता है, वहाँ सत्ता नहीं होती, कोई चाहत नहीं होती।

क्योंकि प्रेम कहता है "तू", साधना कहती है "मैं"। जहाँ मैं का बन्धन नहीं रहेगा, प्रेम वहाँ से शुरू होता है। इसलिए कर्मकाण्ड तो शरीर, मन, बुद्धि के धरातल पर शुरू होते हैं। इसके बाद शुरू होती है बौद्धिक प्रक्रिया, जिसको ज्ञान योग कहते हैं।

ज्ञानयोग द्वारा मनुष्य धर्मग्रन्थों का विद्वान बन जाता है और बुद्धि में उस ज्ञान को ग्रहण करके यह सोच लेता है कि मैंने परमात्मा को प्राप्त कर लिया। जैसे वेदान्त दर्शन पढ़कर कोई भी अपने नाम के आगे परमहंस शब्द लिख लेता है, सोचता है कि मैंने परमात्मा के दर्शन कर लिये हैं। लेकिन वह तो शब्दों का ज्ञान है। ज्ञान सत्य को दर्शाता है, सत्य को प्राप्त नहीं कराता। प्रेम सत्य को प्राप्त कराता है।

ज्ञान और प्रेम एक ही पक्षी के दो पंख हैं। यदि ज्ञान

नहीं तो प्रेम अधूरा है। जैसे, किसी को यह बोध न हो कि परमात्मा कहाँ और कैसा है, तो वह किसका ध्यान करेगा? इसलिए बिना ज्ञान के प्रेम अधूरा है और बिना प्रेम के ज्ञान अधूरा है।

जब आपको बोध रहेगा ही नहीं कि परमात्मा कौन है, तो आप किसी का भी ध्यान कर सकते हैं। हनुमान जी के दर्शन के लिए आप आँखें बन्द करके कई-कई दिन ध्यान लगा सकते हैं। भगवान राम के लिए, भगवान श्री कृष्ण के दर्शन के लिए, भगवान शिव के दर्शन के लिए। कोई किसी प्रतिमा का ध्यान कर सकता है, कोई किसी फोटो का ध्यान कर सकता है। लेकिन जिसे अनन्त सूर्यो से भी अधिक प्रकाशमान उस सच्चिदानन्द परब्रह्म के धाम को जानना है कि वह कहाँ है, वह तो ऐसे ध्यान नहीं करेगा।

हृद पार बेहद है, बेहद पार अक्षर।

अक्षर पार वतन है, जागिए इन घर॥

प्रकाश हिंदुस्तानी ३१/१६५

जिन्होंने उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को जान लिया है वे जानते हैं कि हमें प्रकृति से परे होना है। ये चतुर्दश लोक अष्टावरण युक्त हैं, जिसको गीता में कहा है—

भूमिः आपः अनिलः खं मनो बुद्धिः एव च।

अहंकारं इतीयम् में भिन्ना प्रकृष्टिः अष्टधा॥

गीता ७/८

पञ्चभूत और मन, बुद्धि, अहंकार से युक्त यह अष्टावरण वाला ब्रह्माण्ड है। इसके परे है अहंकार, मोहत्तत्त्व जो प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप है, उसको पार करके उसकी चेतना अव्याकृत अर्थात् बेहद में प्रवेश

करती है। सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप से होते हुए बेहद को पार करके उस अक्षर से भी परे अक्षरातीत के धाम में प्रवेश करती है। जिसके लिए वेद ने कहा—

यत्र ज्योतिः अजस्र यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।

ऋग्वेद ९/११३/७

जहाँ अनन्त ज्योति है, जहाँ आनन्द ही आनन्द है, हे परमात्मा! मुझे वहाँ ले चल, जिसके लिए गीता कहती है—

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम॥

गीता १५/६

जहाँ सूर्य नहीं, चन्द्रमा नहीं, वायु नहीं, वहाँ मेरा परमधाम है, और उस परमधाम का साक्षात्कार जीवन

का सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए। हम प्रकृति से परे होकर ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं।

जो दसवें द्वार में जाएगा , उसको भी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होगा। त्रिकुटी में, भृकुटी में, भ्रमर गुफा में, या किसी भी नाड़ी में, आठ चक्रों के ऊपर आप धारणा, ध्यान, समाधि करते रहेंगे , तो भी आपको परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होगा। आपने मूलाधार चक्र को जाग्रत कर लिया, आज्ञा चक्र को जाग्रत कर लिया, दसवें द्वार में स्थित आठवें चक्र को जाग्रत कर लिया , आपको सिद्धियाँ तो मिल जायेंगी, लेकिन परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होगा। इसलिए इससे परे एकादश द्वार, जिसको एकादश खिड़की भी कहा गया है, में ध्यान करने का विधान है।

एक कल्प में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होते हैं।

चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक आप जप, तप, पूजा-पाठ करते रहेंगे, तो भी परमात्मा का दर्शन यानी अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति का दर्शन नहीं हो सकता। लेकिन पलक झपकने के बराबर भी यदि आपका शरीर स्थिर हो जाये, मन स्थिर हो जाये, प्राण स्थिर हो जाये, सुरति और निरति ग्यारवहीं खिड़की में प्रवेश कर जाये, तो उतने में आपको अक्षर की चतुष्पाद् विभूति - अव्याकृत, सबलिक, केवल, सत्स्वरूप- का दर्शन हो जाएगा। किन्तु यह भी अक्षरातीत का दर्शन नहीं है। अक्षरातीत के साक्षात्कार के लिए आपको अपने हृदय मन्दिर में स्थित आत्मा के धाम हृदय में उस प्रियतम को बसाना होगा, क्योंकि-

ऊपर तले अर्स न कहा, अर्स कहा मोमिन कलूब।

श्रृंगार २३/७६



परमात्मा कहाँ है? आत्मा के अन्दर अन्तर्यामी रूप से स्थित है। इसलिए संसार के समस्त द्वन्द्वों से परे होकर उस लक्ष्य को निर्धारित करना पड़ेगा। इसको एक दृष्टान्त से समझिए, तो बात सरलता से समझ में आ जाएगी। जब मिसाइल छोड़नी होती है, तो क्या किया जाता है? मिसाइल अलग स्थित की जाती है, कम्प्यूटर पर उसका पैमाना बनाया जाता है कि कितनी दूरी पर हमें मिसाइल गिरानी है और किस दिशा में गिरानी है। उसका एक बटन होता है, जो दबाते ही मिसाइल उस जगह पर पहुँच जाती है। उसी तरह, जैसे मैंने विभूति पाद का एक थोड़ा-सा अंश बताया कि यदि आप नाभि चक्र में ध्यान करते हैं, समाधि करते हैं, तो प्रकृति में जितने तारा चक्रों का समूह है जो बड़ी-बड़ी दूरबीनों से देखने में नहीं आता है, वह आपको ध्यान में आत्म-

चक्षुओं से दिखाई दे जाएगा।

**भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।**

**योग दर्शन ३/२६**

सूर्य नाड़ी में संयम करने से सारे ब्रह्माण्ड का दृश्य नजर आ सकता है। उसी तरह से चन्द्र नाड़ी में संयम करने से मनुष्य प्रियदर्शी हो सकता है। जिसको लक्ष्य लेकर जहाँ-जहाँ ध्यान करेंगे, उसी के अनुसार प्रभाव दिखेगा। आज्ञा चक्र में ध्यान करेंगे, तो बुद्धि का प्रकाश होगा। दसवें चक्र में ध्यान करेंगे या आठवें चक्र में ध्यान करेंगे, तो उसका अलग-अलग प्रभाव होगा। चूँकि ब्रह्माण्ड का सारा संक्षिप्त रूप इस शरीर के अन्दर है। जैसा ध्यान करेंगे, जिसको लक्ष्य लेकर ध्यान करेंगे, वैसा ही समाधि में दृष्टिगोचर होगा। यदि आपको बोध है कि परमात्मा अक्षर से परे हैं और आपने माधुर्य भावना से ध्यान किया, तो सफलता अवश्य मिलती है।

माधुर्य भावना का तात्पर्य क्या है ? सबके मन में भावना क्या होती है? शरीरजन्य भावना। पुरुष वर्ग क्या सोचेगा? हम तो परमात्मा के दास हैं और बहनें सोचेंगी कि हम तो दासियाँ हैं। यदि कोई स्वयं परमात्मा को सखा मानेगा, तो भी इसमें समर्पण की भावना नहीं हो सकती, क्योंकि समर्पण की पराकाष्ठा होती है माधुर्य भावना में, जिसमें आत्मा और परमात्मा उस रूप में हो जाते हैं जैसे सागर और उसकी लहर। उसी बात को वेद के इस मन्त्र में दर्शाया गया है—

यदग्रे स्याम अहं त्वं त्वं वा घा स्यामहम् स्युस्ते सत्या इहाशिषः।

ऋग्वेद ८/४५/२३

अर्थात् जो मैं हूँ वह तू हो जाए और जो तू है वह मैं हो जाऊँ। इसको एक दृष्टान्त से समझिए—

क्या मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सिंहासन पर कभी हनुमान जी बैठ सकते हैं? हनुमान जी का जीवन राम जी के लिए समर्पित है, लेकिन राम जी के सिंहासन पर हनुमान जी नहीं बैठ सकते। उस जगह पर लक्ष्मण भी नहीं बैठ सकते, राम के सखा सुग्रीव भी नहीं बैठ सकते, लेकिन सीता जी को अधिकार है, क्योंकि सीता उनकी अर्धांगिनी है। आप उस माधुर्य भावना में डूब जाइए कि जो तू है, वह मैं हूँ। सागर और उसकी लहरों में क्या भेद होता है? सूर्य और उसकी किरणों में क्या भेद होता है? हाथ और उसकी अँगुलियों में क्या भेद होता है? चन्द्रमा और चाँदनी में क्या भेद होता है?

यदि उस भावना से भावित होकर हमने माधुर्य भावना अपना ली कि हे प्रियतम! जो तू है मैं वही हूँ, तो निश्चित रूप से सारा संसार मिट जाएगा। उस भावना से

भावित होकर यदि हम अपनी आत्मा के धाम-हृदय में उस प्रियतम परब्रह्म की छवि को बसाते हैं, तो यहीं बैठे-बैठे ऐसा लगेगा कि जिस परमधाम के कण-कण में परब्रह्म का स्वरूप है, असंख्य सूर्यों से अधिक प्रकाशमान वह परब्रह्म मेरी आत्मा के हृदय में वैसे ही दृष्टिगोचर हो रहा है जैसे आकाश में उगता हुआ सूरज एक दर्पण के अन्दर प्रतिबिम्बित होता है।

प्रियतम परब्रह्म के साक्षात्कार की यही प्रक्रिया है। इसमें हठयोग की कोई भी प्रक्रिया नहीं चल सकती। राजयोग की कोई प्रक्रिया नहीं चल सकती। ज्ञानयोग, मन्त्रयोग, तपयोग भी यहाँ नहीं चल पायेगा। यहाँ माधुर्य भावना का विशुद्ध प्रेम है, जिसमें प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध होता है। अनन्य प्रेम का तात्पर्य क्या है? आमतौर पर एक बात कही जाती है कि पन्थ तो सभी हैं

और सभी एक ही मन्जिल पर जाएँगे। कबीर जी ने एक बात कही है—

**नदिया एक घाट बहुतेरे।**

इस बात को तो सभी याद रखते हैं। इसके आगे क्या कहा है, यह कोई नहीं सोचता।

**नदिया एक घाट बहुतेरे, कहे कबीर वचन के फेरे।**

कबीर जी कहते हैं कि बात उल्टी है। नदियाँ अनेक हैं, लेकिन घाट एक है। शब्दों का बाह्य अर्थ क्या होगा? लोग इसका क्या अर्थ लगाते हैं। जिस तरह से किसी मन्जिल पर जाने के लिए अनेक रास्ते हो सकते हैं। एक ही नदी पर कई घाट बने होते हैं और किसी भी घाट पर से हम नदी के उस पार जा सकते हैं। उसी तरह से किसी भी रास्ते पर चलकर हम परमात्मा का दर्शन पा

सकते हैं। वास्तव में यह बात नहीं है।

इस लखनऊ शहर में गोमती नदी बहती है। गोमती नदी पर, मैं समझता हूँ, कई पुल बने होंगे। निशातगँज के पुल को आप पार करें, तो आप निशातगँज ही जाएँगे। उससे पाँच किलोमीटर दूर जो पुल बना होगा, उसको पार करने पर किसी और स्थान पर जायेंगे। एक ही नदी पर पचास-पचास किलोमीटर की दूरी पर जितने घाट होंगे, तो इनसे एक जगह ही नहीं जाया जायेगा, बल्कि अलग-अलग घाटों से अलग-अलग स्थानों पर जायेंगे।

वाराणसी का नाम वाराणसी कैसे पड़ा? काशी में दो नदियाँ बहती हैं— वरुणा और गंगा। गंगा के किनारे अस्सी घाट है। वरुणा और अस्सी घाट के बीच में वाराणसी नगर स्थित है। गंगा एक ही है। अश्वमेध घाट से गंगा जी को पार करेंगे, तो कोई और स्थान आयेगा,

अस्सी घाट से गंगा जी को पार करेंगे, तो कोई और स्थान आयेगा। एक ही मन्जिल पर जाने के लिए कई घाट कभी भी नहीं हो सकते।

आपको यहाँ से कानपुर जाना है। कानपुर लखनऊ की दक्षिण-पश्चिम दिशा में है। यदि आप उत्तर दिशा में चलना शुरू कर देंगे, तो आप नेपाल पहुँच जाएँगे। यदि दक्षिण की तरफ चलना शुरू कर देंगे, तो चेन्नई और बेंगलूर पहुँच जाएँगे। पूर्व की तरफ चलना शुरू कर देंगे, तो गुवाहाटी पहुँच जाएँगे। कानपुर तब भी नहीं आयेगा। परमात्मा एक है और परमात्मा को पाने का मार्ग भी एक ही होता है। सत्य एक है, सत्य को पाने का मार्ग एक ही होता है। उस सत्य को आप शरीर के कर्मकाण्डों से कभी भी नहीं पा सकते, चाहे आप पूजा-पाठ करते रहिये, परिक्रमा करते रहिए, उछल-कूद करते रहिए।



बुद्धि के धरातल पर कुछ भी करिए, माला का जप करते रहिए, सब कुछ करते रहिए। आपके मन में पवित्रता तो आ सकती है, सिद्धि-विभूतियाँ आपका दामन पकड़ सकती हैं, आप संसार में प्रसिद्ध हो सकते हैं, लेकिन आप परमात्मा का दर्शन नहीं पा सकते।

राजयोग से, जपयोग से, नादयोग से, मन्त्रयोग से आप सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन आप परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकते। यदि आप राजयोग की प्रक्रिया को अपनाते हैं, तो असंख्य ब्रह्माण्ड जिस महाशून्य में लीन होते हैं, वहाँ तक पहुँच सकते हैं, कैवल्य की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, महाप्रलय तक जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकते हैं, लेकिन तब भी बेहद में प्रवेश नहीं हो सकता। यदि आपने विहंगम योग की प्रक्रिया अपना ली, प्रकृति के गुह्य रहस्यों को जान

लिया, निराकार-शून्य-महामाया प्रकृति से अपने को परे कर लिया, तो आप अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप का साक्षात्कार कर सकते हैं।

यदि आपको तारतम ज्ञान द्वारा पता चल गया कि कौन है परमात्मा? कहाँ है परमात्मा? कैसा है परमात्मा? और अपने आपको मिटा दिया, मैं (खुदी) के बन्धन से अपने को अलग कर दिया, प्रेम-माधुर्य भाव में आप डूब गये, अपनी आत्मा के धाम-हृदय में उसी परब्रह्म को खोजने लगे, तो जैसे मैंने मिसाइल का दृष्टान्त दिया था कि किस जगह है परमात्मा, कहाँ है परमात्मा, उसको लक्ष्य में लेकर आपकी आत्मा इस अष्टावरण युक्त ब्रह्माण्ड से परे, इस प्रकृति से परे, बेहद से परे, अक्षर से परे, उस परमधाम में विद्यमान परब्रह्म के अखण्ड एवं अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान

स्वरूप को यदि देखना चाहती है, तो उसका दर्शन आत्मा के धाम-हृदय में अवश्य होगा।

यही प्रेम लक्षणा भक्ति है, जिसमें शरीर नहीं, मन नहीं, अहंकार नहीं, जीव भाव नहीं, बुद्धि नहीं, केवल आत्मा अपने प्राणवल्लभ को देखती है।

॥ इति पूर्णम्॥